...वीर चरितम्

(महाकाव्यम्)

प्रणेता—
कृष्ण दत्त: शर्मा शास्त्री
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) एल० टी० साहि० रत्न
सेवा निवृत्त
सह जिला विद्यालय निरीक्षक, (मेरठ)

घोषणा

मैं कृष्णदत्त शर्मा प्रमाणित करता हूँ कि मेरी रचना 'शिववीर चरितम्' मौलिक प्रमाणिक अनुवाद के साथ प्रथमबार वर्ष १९६२ में प्रकाशित हुई है।

मैं मूलतः उ० प्र० का निवासी हूँ।

कृष्ण दत्त शर्मा
८१ अकबर गंज
हापुड़ (गाजियाबाद)
उ० प्र०

२४.१२.९३

स्वतन्त्रता प्रेमी, स्वाभिमानी, मातृ-भक्त, कुशल राजनीतिज्ञ, भारतीय संस्कृति के पोषक, मराठा राज्य के संस्थापक वीर शिरोमणि छत्रपति शिवाजी के व्यक्तित्व व चरित्र को दर्शाने वाली अनूठी कृति—

शिववीर चरितम्

(महाकाव्यम्)

प्रणेता—
कृष्ण दत्तः शर्मा शास्त्री
एम० ए० (हिन्दी,संस्कृत) एल० टी०,साहि० रत्न
सेवा निवृत्त
सह जिला विद्यालय निरीक्षक, (मेरठ)

दी शार्प प्रिंटर्स®
सुभाष बाजार, मेरठ

मूल्य : बत्तीस रुपये मात्र (३२.००)

लेखक की प्रमुख कृतियाँ

- भारत दर्शनम्
- प्रताप-प्रशस्तिः
- कृषाण-सैनिकौ
- शिववीर चरितम्
- सेनानीः सुभाष
- शैशव शतकम्

हिन्दी में—'शक्ति और प्रताप' (खण्ड काव्य)

संस्करण प्रथम १९९२

मूल्य : ३२.००

★ फोटोकम्पोजिंग : दी शार्प प्रिंटर्स, मेरठ

★ मुद्रक : प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग मीडिया, मेरठ

अनुक्रमणिका

परिचय

नाम—कृष्णदत्त शर्मा

जन्म—१५ जुलाई १९३०

ग्राम—बछलौता (गाजियाबाद)

सम्प्रति—८१ नया १०१ जवाहरगंज, हापुड़ (गाजियाबाद) उ० प्र०

पिता—श्री पं० चिरञ्जीलाल शर्मा (स्व०)

माता—श्रीमती द्रौपदी देवी (स्व०)

गुरु—श्री बालकराम जी गौड, पुराणेतिहासाचार्य पूर्व प्रधानाचार्य श्री चण्डी संस्कृत विद्यालय, हापुड़

शिक्षा— व्या० मध्यमा श्री चण्डी संस्कृत विद्यालय, हापुड़
साहि० शास्त्री श्री राधाकृष्ण संस्कृत महाविद्यालय, खुर्जा
एम० ए० (हिन्दी सस्कृत) आगरा विश्वविद्यालय, आगरा,
एल० टी०, हिन्दी कोविद् एवं साहित्य रत्न।

व्यवसाय— अध्यापन

सह-अध्यापक राजकीय दीक्षा विद्यालय
व प्रवक्ता राज० जू० बे० ट्रेनिंग कालेज
राजकीय इण्टर कालेज

प्रधानाचार्य—राजकीय इण्टर कालेज

सहसचिव—माध्यमिक शिक्षा परिषद (उ० प्र०)

सेवानिवृत्ति—सह जिला विद्यालय निरीक्षक, (मेरठ)

सम्प्रति—मंत्री संस्कृत साहित्य परिषद् (हापुड़)। लेखन कार्य

कृतियाँ—

'भारत दर्शनम्	उ० प्र० संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत
प्रताप प्रशस्तिः	,, ,,
कृषाण-सैनिकौ	प्रकाशित
शिववीर चरितम्	प्रकाशित
सेनानीः सुभाषः	मुद्रण में
शैशव-शतकम्	अप्रकाशित

सम्पर्क—८१ नया १०१ जवाहरगंज, हापुड़ (गाजियाबाद) उ० प्र०।

अपनी बात

संस्कृत-साहित्य-महावन के विस्तृत, विशाल क्षेत्र के एक छोटे से स्थान पर पनपने वाले पादप की चतुर्थ कलिका **'शिव-वीर-चरितम्** सुधीजनों के कर-कमलों तक पहुँचाते हुए मुझे अपार हर्ष है। इससे पूर्व इसी पादप की तीन कलिकाएँ (१) **भारत-दर्शनम्,** (२) **प्रताप-प्रशस्तिः** (३) एवं **कृषाण-सैनिकौ** के नाम से आपके कर-कमलों तक पहुँच चुकी हैं। **'भारत-दर्शनम्'** व **'प्रताप-प्रशस्तिः'** उ० प्र० संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत भी हुई हैं। तीनों ही कृतियों को सहृदय सुधीवरों ने सराहा है। उसी से प्रेरित होकर माँ सरस्वती के चरणों में यह चतुर्थ सुमन-कलिका समर्पित करते हुए आत्मतोष अनुभव कर रहा हूँ। आशा करता हूँ कि सहृदय विज्ञ पाठकों को यह कृति भी पसन्द आयेगी।

'शिव-वीर-चरितम्' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। इस काव्य के नायक इतिहास निर्माता, भारतीय संस्कृति एवं धर्म-रक्षक, स्वाभिमानी देशभक्त, वीराग्रणी छत्रपति महाराज शिवाजी हैं। इनके जीवन की सभी घटनाएँ अपने में महत्वपूर्ण हैं परन्तु प्रस्तुत काव्य में कुछ ही प्रसंगों को अंकित किया गया है। यह काव्य इतिहास से पोषित अवश्य है परन्तु इतिहास नहीं है। इस काव्य में घटनाओं का चित्रण 'छावा', 'शिवाजी सावन्त', 'शिवराज विजयः', पं० अम्बिकादत्त व्यास एवं अन्य इतिहास ग्रन्थों का आश्रय लेकर किया गया है। कवि उनके प्रति आभारी है।

इस काव्य के सृजन में पूज्यपाद गुरुवर श्री बालकराम जी गौड़, श्री आचार्य प्रभुदत्त स्वामी व आचार्य वैजनाथ स्वामी ने मुझे सदा ही संबल प्रदान कर मेरा मार्ग-दर्शन किया है। उनके आशीर्वाद के बिना मैं इस काव्य को पूर्ण करने में कभी भी समर्थ नहीं था। उनके प्रति मैं सर्वदा नतमस्तक हूँ। श्री गोपीचन्द्र शास्त्री व जिन हितैषी मित्रों एवं बन्धुओं ने मुझे सदा प्रेरित किया है उनके प्रति मैं आभारी हूँ। जिन काव्य मर्मज्ञ शुभचिन्तकों एवं सुधीवरों ने अपने आशीर्वचन देकर मुझे कृतार्थ किया है उनके प्रति भी मैं नतमस्तक हूँ।

इस काव्य-कलिका को पाठकों के कर-कमलों तक पहुँचाने में कवि कदापि सफल न हो पाता यदि **राहुल प्रकाशन** के व्यवस्थापक **श्री राकेश जी** इसके प्रकाशन का भार अपने ऊपर न लेते। उनकी सहानुभूति व उदारता के लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

त्रिपाठी (डॉ०) श्री सुधाकराचार्य, मेरठ विश्वविद्यालय के प्रति तो मैं हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर, इस काव्य की भूमिका लिखकर मुझे कृतार्थ किया है।

विज्ञवर,

यदि यह काव्य सहृदय उदार पाठकों एवं काव्य-कला मर्मज्ञ सुधीजनों को अपने कुछ गुणों से अपनी ओर आकृष्ट करता है तो वह सब मेरे गुरुजनों की कृपा है। यदि कहीं कोई दोष-दृष्टिगत होता है तो वह मेरी अज्ञानता है। सुविज्ञ सहृदय पाठकों से निवेदन है कि वे मेरे काव्यगत दोषों/त्रुटियों को मेरा अज्ञान समझकर क्षमा करें और मेरी उन त्रुटियों की ओर संकेत करके मेरा मार्ग-दर्शन करने की कृपा करें जिससे दूसरे संस्करण में वे त्रुटियाँ फिर न हो सकें। साधुवाद।

दिनांक ७, जुलाई १९९०

विद्वद्विधेयः—
कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री

८१, जवाहरगंज
हापुड़ (गाजियाबाद)
उ० प्र०

त्रिपाठी (डॉ०) सुधाकराचार्य :
उपाचार्यः संस्कृतस्य
मेरठ विश्वविद्यालये,
मेरठ नगरे (उ० प्र०) २५०००५

निवास : सी-७ विश्वविद्यालयपरिसरे
मेरठ नगरे (उ० प्र०)
दिनांकः १०-४-८९

भूमिका

'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।'
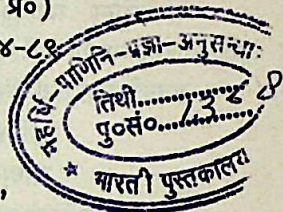
अद्यत्वे भारतवर्षे प्रायः सर्वत्र अहमहमिकाघोषः केन्द्रराज्यविरोधपरिपाटी तर्कपुष्टाऽपि क्वचिद्विद्रोहसीमानं चुम्बन्ती, क्वचित्कादाचित्कीं दौर्मनस्यवेलांवेल्लन्ती, क्वचित्पुनर्दोष-च्छिद्रान्वेषणपरम्परां परितः परिपालयन्ती दरीदृश्यते। इयं कूटनीतिशृङ्खला माहाभारतीं नान्दवंशीं मौगलकुलीं च स्मृतिपटलमारोहयति। तदानीमिव 'यः शासकः स दुष्टः, अहमेव योग्यतमः' इत्यादि विचारसरणिरद्य प्रसरति।

अतः एतादृशे काले 'शिवाजी' सदृशवीरपुरुषस्य राष्ट्रभक्तिसुधापूरप्रवाहकस्य चरितमधिकृत्य कृतं काव्यं सर्वथा विचारपटलतरलप्रवाहमनुमोदते। अनेन वैदेशिकजालनिगडितो भारतदेशो दृष्टः। ततः स्वयं कृपाणं करे समुत्थाप्य तथा प्रयासः कृतो यथा हि स्वातन्त्र्यलहरी समान्दोलिताऽद्य फलन्ती शोभमानाऽस्माभिः भुज्यते। अयं वीरः प्रतापी,कुशल; शासक; निपुणो व्यूहभेत्ता, चतुरो दुर्गरक्षकः काले च फलदः, कूटनीतिपटुः किं बहुना, मातुः सुपुत्रः प्रातः स्मरणीय आसीत्।

अस्यैव सत्यप्रयासैः, श्रूयते, ऽद्यत्वेऽस्माकं देशे ग्रामे ग्रामे हनुमन्मूर्तिपुरःसराः मल्लखण्डाः व्यायामशालाश्च शोभन्ते। अस्यैव नाम्ना भारतभूमेः स्वतन्त्रतायै प्रथममान्दोलनं सप्तपञ्चाशदधिकाष्टादशे ख्रीष्टाब्दे प्रारब्धम्। अद्यत्वे च प्रायः सर्वेषु प्रसिद्धनगरारामेषु अ[illegible]रुढश्मश्रुखड्गधरवीरस्य मूर्तयः अस्यैव वीरस्य द्रष्टुं शक्याः।

एतादृशस्य शिवराजविजयगद्यकाव्यवीरस्य शिवाशिब्बाशिवाजीत्यादिनामधेयस्य पराक्रमिणः स्मरति अत्र कृष्णदत्तः शर्मा कविः। अत्र विंशतिसर्गाः। सप्तत्यधिकपञ्चशतश्लोकाः। मान्या मही, पारवश्यम्, शिवराजोद्भवः, मानधनः शिवः, तोरणदुर्गः, अफ़जलान्तः, शाइस्तापराभवः, राजा जयसिंहः, मातृदर्शनम्, आग्राप्रवासः, राजपथपान्थः, सभागतः शिवः, कारागारे महावीरः, चिकित्सकः बन्दीशिवः, परिव्राजकः, विमुक्तिः, मातृत्वम्, राज्याभिषेकः, स्वदेशश्चेति विंशतिसर्गैः सम्पन्नमिदं प्रख्यातकथानकसंयुतं, प्रतिसर्गं छन्दोभेदोच्छलनसंवलितं, क्रमशः करुणशान्त वीररौद्राद्भुतकरुणवीरादिरसोपेतं, प्रायोऽलङ्कृतं, मन्ये, सर्वथा महाकाव्यम्।

तदानीन्तनभारतपारवश्यमुपवर्ण्यासौ कविः शिवराजमुद्भावयति। ततोमानधनः शिवो दुर्गसमारुढो मौहम्मदशासकान् मौद्गलान् आन्दोलयति इति चित्रितम्। अनेन प्रकारेण 'शिवाजीकथाऽग्रे सरति। शिवस्य राज्याभिषेकश्चान्ततः निर्वर्ण्य—

'स्वदेशः सदैवास्ति संरक्षणीयः' इति उपदिशन् सः स्वमनोरथं काव्यसन्देशञ्च समादिशति।

सन्त्यस्मिन् महाकाव्ये बहुशः मनोरमाः काव्यपुलिनभागाः। तेषु कतिपयेऽत्र, स्थालीपुलाकन्यायेन पाणिपरामर्शाय उदाह्रियन्ते। तद्यथा—

द्रवन्तीं सेनां वर्णयति कविः—

'सैनिकास्तुन्दिलाः केचिल्लम्बकूर्चास्तथाऽपरे।
प्राणलोभपराश्चान्ये येन केन पलायिताः।। ५ । १५ ।।

ततो बन्धितं शिवं तूलावृतवह्निमिव निरुपयति कविः—

'बद्धस्त्वयाऽहं, न भवेः प्रसन्नो
जानाति लोकस्त्वनलप्रभावम्।
तूलावृतस्तिष्ठति नैव वह्नि
र्दग्ध्वा हि तूलं समुपैति भावम्'।। १५ । १ ।।

ततो यमुनायां क्षपणकदर्शनदुःखमनुप्रास्यति यमयति च कविः—

दिनकरकरहीना चन्द्रपादैरहीना
दिनपतितनयाऽसौ मोक्षदा कैरवाक्षी।
विमलसलिलवाहा धर्मसंरक्षकं तं
क्षपणककृतवेषं दुःखिताऽभूद्विलोक्य।। १६ । १२ ।।

ततस्त्रिभिः पद्यैरनुप्रासच्छटान्वितैः वनश्रीतारतम्यमिवानुप्रास्यन् कविः वर्णननैपुण्यकाष्ठामाधत्ते। तत्र एकः श्लोकः—

कतिपयकलकण्ठैः कोकिलैः कृष्णवर्णैः
कुटिलकरकठोरैः, कीचकैः कुञ्चितैश्च।
कपिकुलकृतलासैः कृष्णकाकैः कठोरैः,
दिनकरकरकम्रा सर्वथाऽऽसीद् वनश्रीः।। १८ । १५ ।।

अन्ततः 'सर्वसंरक्षणीयः स्वदेश' इति प्रतिपादयता कविना महाकाव्यसंदेश इव समादिष्टः—

'सुविज्ञैः सुसभ्यैः सुविज्ञानदक्षैः
सुधीरैः सुवीरैः सुदानानुरक्तैः।
सुशीलैः सुवेद्यैः स्वधर्मानुरक्तैः
स्वदेशः सदैवास्ति संरक्षणीयः।। २० । १ ।।

भवतु, यशोऽर्थकरणादिकं समग्रमपि प्रयोजनं साधयेदिदं महाकाव्यमित्याशासमानोऽस्मि—

श्रीपञ्चमी, शुक्लचैत्रस्य, २०४६
मेरठ नगरे (उ० प्र०) भारतवर्षे।

सुधाकरः

शिववीर-चरितम्

विद्यादेवीं नमस्कृत्य, गणेशं सिद्धिदं प्रभुम्।
आशिषं प्रणतो याचे, गुरूँश्चैव सुधीवरान्।।

१

मान्या मही

सुरवरमुनिवन्द्या भारतीया धरित्री,
जलधिजलतरंगै धौतपादा पवित्रा।
विविधफलसुधान्यैः सुप्रदेशैः प्रपूर्णा,
जनयतु जननी सा देशभक्तान्सुवीरान्।। १ ।।

देवताओं एवं श्रेष्ठ मुनिजनों से सदा वन्दनीय, समुद्र की तरंगों से प्रक्षालित पवित्र चरणों वाली, अनेक प्रकार के फलों एवं सुन्दर धान्यों से परिपूर्ण, अनेक प्रदेशों से सम्पन्न, मेरी वह भारत भूमि सदा ही देशभक्त शूरवीरों को जन्म देती रहे।

विविधजनसुधर्मैर्भिन्नभाषासुवेषैः,
परिमलपरिपूर्णैर्भिन्नवर्णैः प्रसूनैः।
खग-पशु-गिरि-नीरैः शोभिता शाश्वतम् या,
वितरतु वसुधा सा सर्वलोकाय भद्रम्।। २ ।।

जो भारत भूमि नाना प्रकार के मनुष्यों, धर्मों, भाषाओं एवं वेषभूषाओं वाली है, सुगन्धयुक्त विविध वर्णों वाले पुष्पों से सम्पन्न है, तरह-तरह के पक्षी-पशु-पर्वत एवं जलों वाली हैं, वह भूमि विश्व का सदा कल्याण करती रहे।

अभयदे ! तनयो लघुवैभव, उदरपूर्तिपरायणलालसः।
नमति भक्तिपरो नतमस्तक, स्तव पदेषु समर्पितजीवनः।। ३ ।।

हे अभय प्रदान करने वाली (भारत माता) स्वल्प वैभव वाला, सदा अपनी उदरपूर्ति में लगा रहने वाला, भक्ति परायण, तेरे चरणों में अपना जीवन अर्पित करने वाला, तेरा पुत्र (मैं) नतमस्तक हुआ तुझे प्रणाम करता है।

वर्षे प्रदेशाः स्थितिभिर्निजाभिः
सन्ति प्रसिद्धा भुवि लब्धमानाः।
सर्वेप्रदेशा गुणगौरवेण,
देशे विशिष्टं स्वपदं भजन्ते।। ४ ।।

भारतवर्ष में सभी प्रदेश सम्मान प्राप्त हैं और अपनी-अपनी स्थिति से प्रसिद्धि प्राप्त हैं। वे सभी प्रदेश अपने गुण-गौरव से देश में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

वश्या नमस्याः स्वगुणैः प्रशस्या,
भक्ता विरक्ता वसुधानुरक्ताः।
लब्धप्रतिष्ठाः सुमहाबलिष्ठा,
अत्रैव धीरा निवसन्ति वीराः।। ५ ।।

इस भारत देश में जितेन्द्रिय विद्वान, अपने सद्गुणों के कारण प्रशंसा किए जाने योग्य भक्त, विरक्त, मातृ-भूमि के प्रति अनुराग रखने वाले, सम्मान प्राप्त करने वाले, महाबलशाली वीर और धीर व्यक्ति निवास करते हैं।

देशे प्रदेशा वहवोऽत्र सन्ति, तेषु प्रवीराः सततं वसन्ति।
वन्द्या महाराष्ट्र-मही सुमान्या, या शोभते वीरवरैः सुधीरैः।। ६ ।।

इस भारत देश में बहुत से प्रदेश हैं। उनमें बड़े-बड़े वीर सदा से रहते आये हैं। महाराष्ट्र प्रदेश की जो वन्दनीय एवं सम्माननीय भूमि है वह धीर और वीर व्यक्तियों से सदा सुशोभित रही है।

रत्नाकरः स्वच्छतरंगहस्तै, र्भूमिं प्रदेशस्य सदा पुनाति।
पुनीतभावा जननी स्वपुत्रान् पुष्णाति नित्यं सुपयः प्रदानैः।। ७ ।।

महाराष्ट्र प्रदेश की भूमि को समुद्र अपने स्वच्छ तरंग रूपी हाथों से धोकर सदा पवित्र करता रहता है। पवित्र भावों वाली माता (महाराष्ट्र भूमि) अपना पय (दूध/पानी) पिलाकर अपने पुत्रों को सदा पुष्ट बनाती रहती है।

शैला विशालाः सुदृढा गरिष्ठा,
बाला युवानश्च महावलिष्ठाः।
नद्यः सुनीराः प्रकृतिः सुरम्या,
भूमौ प्रदेशस्य सदा रमन्ते।। ८ ।।

महाराष्ट्र प्रदेश की भूमि पर दृढ़ एवं बड़े-बड़े विशाल पर्वत, बलशाली बालक, बालिका एवं युवक, अच्छे जल वाली नदियाँ एवं अच्छी लगने वाली प्रकृति सदा ही निवास करती हैं।

जननी वीर पुत्राणां, विदुषाञ्च महात्मनाम्।
महाराष्ट्र-मही मान्यां, वन्द्या पूज्या सदा सुतैः।। ९ ।।

५. ...द्वानों एवं महात्माओं को जन्म देने वाली मान्या महाराष्ट्र-मही अपने पुत्रों के द्वारा सदा ही वन्दनीय एवं पूजनीय रही है।

प्रकृती रमते नित्यम्मत्वा नैजं निकेतनम्।
प्रकृत्या पोषिताः पुत्राः पिबन्ति पौरुषं पयः।। १० ।।

इस प्रदेश को अपना घर मानकर प्रकृति सदा रमण करती रहती है। प्रकृति से पालित पुत्र पय (दूध/जल) और पौरुष का पान करते रहते हैं।

बाहुल्येनात्र लभ्यन्ते, कदली-नारिकेलकाः।
उत्तुंगाः श्यामवर्णाश्च, तालवृक्षा मनोहराः।। ११ ।।

यहाँ पर केले, नारियल और ऊँचे-ऊँचे श्यामवर्ण वाले, सुन्दर ताड़ के वृक्ष बहुलता से पाये जाते हैं।

अत्रत्या मानवाः सन्ति, धर्म-कर्मपरायणाः।
श्रमशीलाः सुविज्ञाश्च, सर्वथा मानरक्षकाः।। १२ ।।

यहाँ के निवासी धर्म-कर्म करने वाले, परिश्रमी, अच्छे बुद्धिमान और अपने मान की सभी प्रकार से रक्षा करने वाले हैं।

महावीरा निरातंका, निर्भयाश्च युयुत्सवः।
कर्मण्या देशभक्ताश्च, वर्तन्ते राष्ट्रजा जनाः।। १३ ।।

महाराष्ट्र के मनुष्य महावीर, निर्भय, आतंकित न होने वाले, युद्ध करने वाले, कर्मशील एवं देशभक्त होते हैं।

राष्ट्रजा युवका बालाः सन्ति देशाभिमानिनः।
प्रियप्राणान्स्वदेशार्थं प्रदातुं तत्पराः सदा।। १४ ।।

महाराष्ट्र के युवक, बालक और बालिकाएँ अपने देश पर गर्व करने वाले हैं। वे अपने देश के लिए अपने प्रिय प्राण देने के लिए सदा तैयार रहते हैं।

योषितश्चापि धर्मज्ञाः कर्मण्याः पुत्रवत्सलाः।
शासति स्व सुतान्नित्यं'न दैन्यं न पलायनम्'।। १५ ।।

यहाँ की नारियाँ भी धर्म करने वाली, कर्मठ एवं पुत्रों का प्रेम से लालन-पालन करने वाली हैं। वे अपने पुत्रों को सदा यही शिक्षा देती हैं कि जीवन में न तो कभी दीन भाव रखना और न ही कभी अपने कर्त्तव्य पथ से ही विचलित होना।

राष्ट्रजा मातरो नूनं पुत्रकान्पयसा समम्।
पाययन्ति सुवीरत्वं, साहसं पौरुषं बलम्।। १६ ।।

महाराष्ट्र की माताएँ निश्चय ही अपने पुत्रों को दूध के साथ वीरता, साहस, पौरुष एवं बल का पान करा देती हैं।

अनालस्यं समुद्योगो बुद्धिचातुर्यमेव च।
कौशलं नीतिनैपुण्यं वर्तन्तेऽत्रजने-जने।। १७ ।।

यहाँ महाराष्ट्र में प्रत्येक मनुष्य में स्फूर्ति, उद्योग, बुद्धिचातुर्य, कौशल एवं नीतिनिपुणता पाई जाती हैं।

एकनाथस्तुकारामो रामदासश्च वामनः।
समाजं प्रेरयामासुः कर्तुङ्कर्म सदा शुभम्।। १८ ।।

यहाँ पर एकनाथ, तुकाराम, रामदास एवं वामन आदि महापुरुषों ने समाज को सदा शुभ कर्म करने के लिए प्रेरित किया।

"जन्मतः कोऽपि नास्त्यत्र वन्दनीयो नरो नरैः।
स्वकीयैः कर्मभिर्नूनं वन्द्यो भवति मानवः"।। १९ ।।

इस भूमि पर कोई भी मनुष्य मनुष्यों के द्वारा जन्म से ही वन्दनीय नहीं होता। मनुष्य तो निश्चय ही अपने कर्मों से वन्दनीय होता है।

इति प्रचारयन्तस्ते महाराष्ट्रमहीतले।
नगरान्नगरञ्चेरुः बोधयन्तो जनव्रजम्।। २० ।।

इस प्रकार प्रचार करते हुए वे महापुरुष महाराष्ट्र की भूमि पर मनुष्यों को जगाते हुए नगर से नगर घूमे।

प्रबुद्धस्तत्समाजोऽत्र, जातः संघटितो भृशम्।
अत्रत्या नागरा यस्माद् भ्रातृभावं मुदाऽभजन्।। २१ ।।

यहाँ पर उन महापुरुषों के द्वारा जगाया हुआ वह समाज पूर्ण रूप से संघटित हो गया जिससे यहाँ के नागरिकों में भाईचारा बढ़ गया।

सुविज्ञा देशनेतारः शास्ति-शास्त्रविचक्षणाः।
बाल-पालादयश्चात्र जज्ञिरे मार्गदर्शकाः।। २२ ।।

यहाँ पर विद्वान देशनेता, शासनशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान, और बाल गंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले जैसे मार्गदर्शक महापुरुषों ने जन्म लिया।

अत्रत्या मानवाः सन्ति सावधाना स्व कर्मसु।
'कर्मण्येवाधिकारो नो' ज्ञात्वा कर्मपरायणाः।। २३ ।।

'कर्म करने में ही हमारा अधिकार है' ऐसा जानकर यहाँ के मनुष्य अपने-अपने कार्यों में सावधान हुए कर्म करते रहते हैं।

पारवश्यम्

यवनानामधीनत्वं भारतीयैर्धराधिपैः।
स्वीकृतं तदनिच्छद्भि र्विवशैर्गतपौरुषैः।। १ ।।

एक समय वह आया जबकि न चाहने वाले, पौरुषहीन, विवश हुए भारतीय राजाओं के द्वारा यवनों की अधीनता स्वीकार कर ली गयी।

आधीन्यं प्राप्य केचित्तु महीपा; क्षेत्ररक्षकाः।
करदा यापयामासुर्जीवनं क्षणभंगुरम्।। २ ।।

कुछ राजा तो मुगलों की अधीनता स्वीकार करके, सीमित क्षेत्र के ही रक्षक बनकर एवं कर देने वाले होकर अपना क्षण-भंगुर जीवन बिताने लगे।

केचिद्भृत्यत्वमापन्नाः शासनं तु सिषेविरे।
अन्ये उच्चपदासीनाः शासति स्म स्वबान्धवान्।। ३ ।।

कुछ राजाओं ने यवनों की दासता स्वीकार करके शासन में नौकरी कर ली और कुछ उच्च पदों पर आसीन हुए अपने ही बन्धुओं पर शासन करने लगे।

तदानीं भारतीयानां नैवासीद् गौरवं निजम्।
तच्चक्रुर्भारतीयास्ते यद् यदैच्छन् प्रशासकाः।। ४ ।।

उस समय भारतीयों का अपना कोई गौरव नहीं था। वे भारतीय राजा तो वही करते थे जो तत्कालीन शासक चाहते थे।

हिन्दुत्वस्य विनाशाय यवनाः क्रूरशासकाः।
प्रायतन्त दिवानक्तं सेवकैर्बन्धुभिस्समम्।। ५ ।।

हिन्दुत्व के विनाश के लिए उन क्रूर यवन शासंकों ने अपने सेवकों एवं बन्धुओं के साथ मिलकर दिन-रात प्रयत्न किया।

पुराऽप्यासीन्महामानी क्षत्रियः कुलभूषणः।
प्रदत्तञ्जीवितंयेन हारिता न स्वतंत्रता।। ६ ।।

पहले भी क्षत्रिय कुलभूषण महामानी क्षत्रिय राजा हुआ था जिसने अपना जीवन तो दे दिया परन्तु स्वतंत्रता नहीं जाने दी।

सूर्यवंशी महाराजः (राणा) प्रतापोलवगोत्रजः।
देशभक्तिं न तत्याज पीडितोऽपि परैः क्वचित्।। ७ ।।

लवगोत्र में जन्म लेने वाले, सूर्यवंशी महाराणा प्रताप ने अपने शत्रुओं से सदा पीडित होते हुए भी अपनी देशभक्ति को कभी नहीं त्यागा।

यस्मात्त्रस्ता यवनास्ते, शयनं नैव लेभिरे।
धन्य एष महाराजः (राणा) धन्या मेवाड-मेदिनी।। ८ ।।

जिससे डरे हुए वे यवन शासक चैन से सो भी नहीं पाते थे, वह महाराणा प्रताप धन्य है और मेवाड़ भूमि भी धन्य है।

भारतीया जना हन्त, कुख्यातं 'जजिया' करम्।
राज्याय ददिरे नित्यं विवशा जीवनोत्सुकाः।। ९ ।।

भारतीयों का दुर्भाग्य कि जीवन की लालसा वाले विवश भारतीय जनों (हिन्दू) को मुगल राज्य के लिये 'जजिया' नाम का कुख्यात कर देना पड़ता था।

देवादेवालयाश्चासन् रक्षिता नैव कर्हिचित्।
गो-विप्रा-धर्म कर्माणि कर्तुं नासन् स्वतः क्षमाः।। १० ।।

उस समय देवता और देवमन्दिर किसी भी तरह सुरक्षित नहीं थे। भारतीय जन गौ-ब्राह्मण एवं धर्म के प्रति किए जाने वाले कर्मों के करने में भी समर्थ नहीं थे।

बहून्हिन्दून्समाकृष्य यवनाः क्रूरशासकाः।
स्वधर्मे दीक्षितान्कर्तुं त्रासयन्ति स्म निर्भरम्।। ११ ।।

तत्कालीन क्रूर यवन शासक अपने धर्म (इस्लाम) में दीक्षित करने के लिए बहुत से हिन्दुओं को पकड़कर बुरी तरह से सताते रहते थे।

हतास्तैस्ते जना दुष्टै 'रिस्लामो' यैर्न मानितः।
अन्ये ते जीविता मुक्ता यैस्तद्धर्मः समाश्रितः।। १२ ।।

उन दुष्ट यवनों के द्वारा वे भारतीय मार दिये जाते थे जो उनके 'इस्लाम' धर्म को स्वीकार नहीं करते थे और उनको जीवित छोड़ दिया जाता था जो उनका धर्म स्वीकार कर लेते थे।

"स्वधर्मेनिधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"।
मत्वा स्वीकृतमन्यैस्तु मृत्योरालिङ्गनमुदा।। १३ ।।

अपने धर्म में मरना कहीं अधिक कल्याणकारी है, दूसरे का धर्म तो सदा ही भयप्रद हुआ करता है। ऐसा मानकर बहुतों ने प्रसन्नतापूर्वक मृत्यु को गले लगा लिया।

इस्लामाख्यो मतो यैर्यैः स्वीकृतः खलु मानुषैः ।
ते क्रूरैः शासकैर्दुष्टैः पीडिता न तु घातिताः ।। १४ ।।

'इस्लाम' मत जिन-जिन मनुष्यों के द्वारा स्वीकार कर लिया गया वे सभी मनुष्य उन क्रूर शासकों के द्वारा सताये तो अवश्य गये परन्तु मारे नहीं गये।

दिल्लीमहीपो नवरंग जीवो,
धर्मान्धता-पंक-निमग्न कण्ठः ।
धर्मं विहन्तुम्मनुगोत्रजाना-
श्चिन्तापरो नैश-सुखं न लेभे ।। १५ ।।

धर्मान्धता की कीचड़ में कण्ठ तक डूबा हुआ दिल्ली नरेश औरंगजेब भारतीयों के धर्म को नष्ट करने के लिए चिन्ताग्रस्त रात में सुख से सो भी नहीं पाता था।

विप्रान्निहत्य प्रतिमाः विखण्ड्य,
देवालयान्पूर्णतयावमत्य ।
ग्रन्थाँश्च संदह्य दुराशयास्ते,
भूमौ विचेरूर्यवना युवानः ।। १६ ।।

दुराशय यवन युवक ब्राह्मणों की हत्या करके, देव मूर्तियों को तोड़कर, मन्दिरों को सभी तरह अपमानित करके और धार्मिक ग्रन्थों को जलाकर भूमि पर स्वतंत्र रूप से घूमने लगे थे।

ते पातयन्तः शिवमन्दिराणि,
सञ्चूर्णयन्तः प्रतिमा भवान्याः ।
पुण्यानितीर्थानि च दूषयन्तो,
मोदं लभन्ते निजकर्मसक्ताः ।। १७ ।।

हिन्दू धर्म के विनाश के काम में लगे हुए वे दुष्ट यवन भगवान शिव के मन्दिरों को गिराते हुए, देवी की प्रतिमाओं को टुकड़े-टुकड़े करते हुए और भारतीयों के पवित्र तीर्थों को दूषित करते हुए आनन्द लेते थे।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले" ।
तदा तदा समायाति दयालुर्जगदीश्वरः ।। १८ ।।

इस भूमि पर जब-जब भी धर्म का ह्रास होता है तब-तब वह दयालु जगदीश्वर इस भूमि पर आता है।

लुप्तप्रायो यदा जातो हिन्दुधर्मः सनातनः ।
शिवः स्वयं तदागत्यारक्षद्धर्मं सनातनम् ।। १९ ।।

भारत में जिस समय हिन्दुओं का सनातन धर्म प्रायः लुप्त सा ही हो चला था तब स्वयं शिव ने यहाँ आकर सनातन धर्म की रक्षा की।

नैशं तमः प्रातरुदेत्य भानु,
र्नष्टं समूलं विदधाति नित्यम्।
सूर्योदये चेतनतामुपेत्य,
माद्यन्ति जीवा नर-योषितश्च।। २० ।।

सूर्य नित्य ही प्रातःकाल उदय होकर रात के अन्धकार को समूल नष्ट कर देता है और जीव-जन्तु, नर-नारी सभी सूर्योदय होने पर चेतनता प्राप्त करके प्रसन्न हो जाते हैं।

उत्तरे भारतेत्वासीन्मुगलानां प्रशासनम्।
दक्षिणे यावनी सत्ता दृढा भूता शनैः शनैः।। २१ ।।

उत्तर भारत में तो मुगलों का शासन था ही, दक्षिण में भी यवनों की सत्ता धीरे-धीरे दृढ होती जा रही थी।

प्रशासति 'जहाँगीरे' तत्पुत्रे, 'शाह' संज्ञिते।
दक्षिणे त्रिषु राज्येषु चासन्यवनशासकाः।। २२ ।।

उत्तर भारत में जहाँगीर और उसके पुत्र शाहजहाँ के शासन करते हुए ही दक्षिण भारत के तीन राज्यों में यवन शासकों ने अपना-अपना शासन स्वतंत्र रूप से चलाना प्रारम्भ कर दिया था।

तत्रैवोच्चपदासीनाः महाराष्ट्रमहीभृतः।
शक्तिं धनञ्च नैपुण्यं लेभिरे निजजीवने।। २३ ।।

उन राज्यों में महाराष्ट्रीय वीर राजा उच्च पदों पर आसीन थे। अतएव उन्होंने अपने जीवन में शक्ति, धन और निपुणता प्राप्त कर ली थी।

स्वपौरुषेणैव महाबलिष्ठा,
जाताः समर्थाः भवितुं गरिष्ठाः।
सम्भूय सर्वे निज कर्मनिष्ठा-
स्तेनुः स्वराज्यम्मृगराजकल्पाः।। २४ ।।

सिंह के समान पराक्रमी वे महाराष्ट्रीय महापुरुष अपने पौरुष से ही महाशक्तिशाली एवं महान बन सके और उन सभी कर्मनिष्ठ महापुरुषों ने अपने राज्य का विस्तार किया।

शाह जी भौंसला प्रख्यो जगदेवो विशेषतः।
मुराराद्याश्च तत्रासन् वस्तुतः शासकाः खराः।। २५ ।।

वहाँ पर उस समय शाह जी भौंसले, जगदेव एवं मुरार आदि ही वस्तुतः प्रखर शासक बने हुए थे।

यवना नाममात्रेण तत्र राज्यत्रयेऽवसन्।
राष्ट्रजानाङ्करेष्वासीद् राज्य-सूत्रं तु वस्तुतः।। २६ ।।

उन तीनों राज्यों में यवन तो नाम मात्र के ही शासक थे। वास्तव में तो वहाँ का राज्य सूत्र महाराष्ट्रीयों के ही हाथों में था।

३

शिवराजोद्भवः

शाह जी भौंसले त्याख्यो युद्धविद्याविशारदः ।
धनाढ्यः शक्तिसम्पन्नो राजनीतिविचक्षणः ।। १ ।।
पौरुषेण रणे शत्रून् विजेतुं सर्वथा क्षमः ।
महाराष्ट्रमहीपुत्रः शशास क्षेत्रकं निजम् ।। २ ।।

युद्ध विद्या का धनी, ऐश्वर्य सम्पन्न, शक्तिशाली, राजनीति के दाँव-पेच जानने वाला, युद्ध में अपने पौरुष से शुत्रओं को परास्त करने में समर्थ, शाह जी भौंसले नाम वाला, महाराष्ट्र भूमि का सपूत अपने क्षेत्र पर शासन कर रहा था।

उदुवाह मरठ्ठाऽसौ, 'भौंसला' लब्धसंज्ञकः ।
पुत्रीं यादवराजस्य 'जीजाबाई' ति विश्रुताम् ।। ३ ।।

'भौंसला' उपाधिधारी उस मराठा वीर ने यादवराव की, जीजाबाई नाम से विख्यात, पुत्री से विवाह किया।

सा साध्वी धर्म तत्वज्ञा, रूपिणी च पतिव्रता ।
नीतिज्ञा निपुणा धीरा, मातृ-भूपासिकाऽभवत् ।। ४ ।।

वह सती-साध्वी, धर्म के तत्व को जानने वाली, रूपवती पतिव्रता नीति के मर्म को जानने वाली, चतुर व धीर जीजाबाई मातृ-भूमि की उपासिका (देशभक्त) थी।

सद्गुणग्रामसम्पन्ना, ख्यातवंशसमुद्भवा ।
वस्तुतो वीरजायाऽऽसीद् वीरभावप्रपूरिताः ।। ५ ।।

विख्यात वंश में जन्म लेने वाली, सद्गुणों से सम्पन्न, वीर-भाव से भरी हुई वह जीजाबाई वास्तव में एक वीर की पत्नी थी।

शिवपूजारता नित्यं धर्म-कर्मपरायणा ।
'जीजा' ख्याऽऽसीन्महाराष्ट्रे, सर्वलोकसमादृता ।। ६ ।।

वह जीजाबाई, धर्म के कर्म करने वाली, नित्य शिव-पूजा करने वाली महाराष्ट्र में सभी से समादृत थी।

समयं प्राप्य सा साध्वी, सर्वलोक प्रकाशकम् ।
तेजोदधार कल्याणी, शत्रुत्रासकरं परम् ।। ७ ।।

उस कल्याणी साध्वी जीजाबाई ने समय पर, सारे संसार को प्रकाशित करने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले परम तेज को धारण किया।

तनयं बलिनं प्राप्तुं शक्तीशं सा दिवानिशम्।
मनसा कर्मणा वाचा, सिषेवे शङ्करं शिवम्।। ८ ।।

वह जीजाबाई शक्तिशाली, बलवान पुत्र की प्राप्ति के लिए, मन-वाणी और कर्म से कल्याणकारी भगवान शिव की दिन रात सेवा में लगी रहती थी।

पदतलकृतलोकः सर्वलोकस्य मान्यः,
गिरिपतितनयेशः प्रेतवृन्दैः सुसेव्यः।
गजमुखगणनाथः शैलजासक्तिसक्तः।
त्रिभुवनपतिरीशः शंकरो मे शरण्यः।। ९ ।।

समस्त लोकों को अपने चरणों के नीचे रखने वाले, सारे संसार के पूज्य, पर्वतराज की पुत्री (पार्वती) के स्वामी, प्रेतगणों से सेवित, गणपति के गणों पर भी अपना अधिकार रखने वाले, पार्वती के प्रेम में आसक्त, तीनों लोकों के स्वामी, भगवान शंकर ही मेरे शरण्य हैं।

शिशुशशिधरमौलिः शंकरः सर्ववन्द्यः,
सुरतरुवरपुष्पैरर्चितः पादपद्मः।
डम-डम कृतनादो वन्दितो देववृन्दैः,
पशुपतिरहिनाथः शंकरो मे शरण्यः।। १० ।।

बाल चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण करने वाले, कल्याणकारी, सभी के वन्दनीय, देवलोक के वृक्षों के उत्तम पुष्पों से पूजित चरण-कमलों वाले, डम-डम शब्द करने वाले; देव समूहों से वन्दित, पशुपति एवं अहिपति भगवान शंकर ही मेरे शरण्य हैं।

मनुजदनुजदेवैः प्रार्थितस्तापहारी,
नगपतिकृतवासो भक्तदुःखापहारी।
विषमगरलपायी शंकरो नीलकण्ठः,
प्रणतजनशरण्यो देव ! देवेश ! पाहि।। ११ ।।

मनुज, दनुज एवं देवताओं के द्वारा प्रार्थना किये जाते हुए, दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों को दूर करने वाले, हिमालय पर्वत पर निवास करने वाले, अपने भक्तों के दुःखों को दूर करने वाले, विषम विष का पान करने वाले, कल्याणकारी, शरण में आये हुए अपने भक्तों की रक्षा करने वाले, नीलकण्ठ भगवान शंकर मेरे शरण्य हैं। हे देव ! हे देवों के देव भगवान मेरी रक्षा करो।

याचे त्वाम्महादेव ! गौरीशं करुणाकरम्।
पुत्रं यशस्विनं देहि, देशगौरववर्धनम्।। १२ ।।

हे महादेव ! करुणा करने वाले, गौरी के स्वामी तुम से मैं यही माँगती हूँ कि तुम मुझे देश का गौरव बढ़ाने वाला यशस्वी पुत्र प्रदान करो।

इत्थं शिवं यादवराज पुत्री,
दिवानिशं तं समुपासमाना।
कालं स्वकीयं शिवभक्तिमग्ना,
पुत्रेच्छया यापयति स्म सर्वम्।। १३ ।।

इस प्रकार शिव भक्ति में डूबी हुई, दिन रात उन भगवान शिव की उपासना में लगी हुई, यादव-राज पुत्री जीजाबाई, पुत्र प्राप्ति की कामना से अपना समय बिताती थी।

'शिवनेरी' ति विख्याते, सुदुर्गे दुर्गमे शुभे।
शिवभक्तिपरा साध्वी, माता पुत्रमसूयत।। १४ ।।

शत्रु के लिए दुर्गम, शुभ लक्षणों वाले, शिवनेर के सुन्दर दुर्ग में, शिव भक्ति में लगी रहने वाली, साध्वी, माता जीजाबाई ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया।

लोक-नेत्र-रसब्रह्म युते ख्रीष्टीयवत्सरे।
चतुर्थेऽथ शुभे मासे, शिवो भूमौ समागतः।। १५ ।।

लोक (७) नेत्र (२) रस (६) ब्रह्म (१) अर्थात् सन् १६२७ ई० के चौथे महीने (अप्रैल) में शिव (शिवाजी) इस भूमि पर आये।

शाह जी भौंसला प्रख्यो मरट्ठावीरकेसरी।
पुत्र-जन्म समाकर्ण्य, ननाम शंकरं शिवम्।। १६ ।।

सिंह के समान पराक्रमी, शाह जी भौंसला नाम वाले मराठा वीर ने पुत्र-जन्म की बात सुनकर कल्याणकारी भगवान शिव को प्रणाम किया।

शिवतुल्यः प्रकृत्यास्यात्पुत्रः शत्रुप्रधर्षकः।
पुत्रनाम पिता चक्रे, समोदं शिवराजकम्।। १७ ।।

मेरा पुत्र प्रकृति से शिव के समान, शत्रुओं का दमन करने वाला हो, यह सोचकर पिता ने पुत्र का नांम शिव राजा (शिवाजी) रखा।

शिवाऽवतरणम्भूमावाकर्ण्य राष्ट्रजा जनाः।
शिवं तं मन्यमाना वै, ननृतुर्मोदनिर्भराः।। १८ ।।

शिव के भूमि पर आने का समाचार सुनकर महाराष्ट्र के निवासी उस बालक को शिव मानकर खुशी से नाच उठे।

कार्तिकेयं सुतं प्राप्य यथा माता महेश्वरी।
मुमुदे तनयं सूत्वा, तथा जीजा जनेश्वरी।। १९ ।।

जिस प्रकार माता पार्वती कार्तिकेय पुत्र को प्राप्त करके प्रसन्न हुई थी उसी प्रकार माता जीजाबाई भी पुत्र को जन्म देकर प्रसन्न हो उठी।

यदा जातः सुजातोऽयम्मातृगौरववर्धकः।
तदाशा निर्मला भूताः सर्वतः सुखदाः बभुः।। २० ।।

जिस समय अपनी माता के गौरव को बढ़ाने वाला वह बालक उत्पन्न हुआ तब सभी दिशाएँ निर्मल हो गयीं और चारों ओर सुख देने वाली बन गयीं।

दिव्यगन्धपरीताश्च सुखदा मोददायकाः।
ववुर्वाताश्चतुर्दिक्षु क्षेम-मंगल सूचकाः।। २१ ।।

(अपनी माता के गौरव को बढ़ाने वाला जब यह बालक पैदा हुआ तो) अलौकिक सुगन्ध से परिपूर्ण, अच्छी लगने वाली, मन को प्रसन्न करने वाली, कल्याण एवं भावी मंगल की सूचना देने वाली वायु चारों दिशाओं में बहने लगीं।

पयांसि पूतपद्मौघैः पादपाः पुष्पपातनैः।
पक्षिणश्च विरावेण, प्रीति-भावमदर्शयन्।। २२ ।।

जलों ने पवित्र कमल-समूहों से, वृक्षों ने पुष्पों के गिराने से और पक्षियों ने अपने शब्द द्वारा अपने प्रेम भाव को दर्शाया।

केकिनः कोकिलैः कीराः कलकण्ठरवैर्निजैः।
जगुर्यशांसि बालस्य मातृ-भू-धर्मरक्षिणः।।२३।।

मयूर, कोयल एवं तोतों ने अपनी सुमधुर कण्ठ ध्वनि से, मातृभूमि एवं धर्म की रक्षा करने वाले उस बालक के यश का गान किया।

गगने निर्मले देवास्तद्वालदर्शनोत्सुकाः।
स्वर्गात्सद्यः सपत्नीकाः ससेवकाः समागताः।।२४।।

अपनी पत्नियों एवं सेवकों सहित, उस बालक के दर्शनों के लिए उत्सुक देवगण शीघ्र ही निर्मल आकाश में आ विराजे।

सिंहजाया समा 'जीजा' पुत्रं तं सिंहशावकम्।
पुपोष स्तन्यदानेन, पुत्रः पौरुषमाप्नुयात्।।२५।।

सिंहिनी के समान उस जीजाबाई ने अपना दूध पिलाकर उस सिंह-पुत्र का पालन-पोषण किया जिससे उस पुत्र ने महान बल प्राप्त किया।

शनै-शनैः स बालोऽथ ववृधे पितृवेश्मनि।
आयुषा सह शूरत्वं वीरत्वं बलमाप्तवान्।।२६।।

धीरे-धीरे वह बालक अपने पिता के घर में बढ़ने लगा और आयु के साथ-साथ शूरता, वीरता और बल प्राप्त करने लगा।

यथा ग्रीष्मे प्रचण्डाशुंस्तपत्युग्रः स्व तेजसा।
तथा स्व तेजसा बालस्तिरश्चक्रे स मौगलान्।।२७।।

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में प्रचण्ड सूर्य अपने उग्र तेज से तपता है उसी प्रकार वह बालक अपने तेज से तपा और मुगलों को तिरस्कृत करने लगा।

स्वाभिमानी क्षम्राशीलो मात्राज्ञापरिपालकः।
महावीरो युयुत्सुश्च प्रसिद्धः सर्वतोऽभवत्।।२८।।

वह बालक चारों ओर स्वाभिमानी, क्षमाशील; माता का आज्ञापालक, महावीर और युद्ध के लिए उत्सुक रहने वाला, प्रसिद्ध हो गया।

सहमाना न तत्तेजो यावना मौगलास्तथा।
विनिद्रा स्वेषु गेहुषु सुखशान्ती न लेभिरे।।२९।।

यवन और मुगल उसके उस तेज को सहन न करते हुए अपने-अपने घरों में, बिना नींद वाले सुख और शान्ति नहीं ले पा रहे थे।

मानधनः शिवः

माता जिजाऊ स्तनपायिनंत
मुत्संगजातं . रुदितं स्वजातम्।
वीराग्रणीनाङ्किल वीरगाथाः
संश्राव्य सा शाययतिस्म नित्यम्।। १ ।।

वह माता जीजाबाई स्तनपान करने वाले, गोदी में रोते हुए अपने पुत्र (शिब्बा) को नित्य ही वीर पुरुषों की गाथाएँ सुना-सुनाकर सुलाया करती थी।

महाजनानाञ्चरितानि तानि, कृत्यानि चैषाञ्जनपावनानि।
अज्ञोऽपि बालो जननी मुखात्तु, श्रुत्वा प्रगाथा हृदये दधार।। २ ।।

महापुरुषों के उन पवित्र चरित्रों को एवं उनके पवित्र कार्यों को तथा गाथाओं को अपनी माता के मुख से सुनकर वह अबोध बालक अपने हृदय में धारण करता रहता था।

पीत्वा पयोऽसौ परिपुष्टगात्रः
क्रोडञ्जनन्याः सुखदं विहाय।
आश्रित्य मातुः श्रयदं कराग्रम्,
चौडो धरायाञ्चदुलश्चचाल।। ३ ।।

माता का दूध पीकर पुष्ट गात्र वाला वह बालक माता की सुखद गोद को छोड़कर, सर पर चूड़ा धारण किये हुए, लड़खड़ाते हुए कदमों से, माता की सहारा देने वाली ऊंगली पकड़कर भूमि पर चला।

अतीत्य शीघ्रं निजशैशवञ्च,
जातः स बालो बलवान्सुवीरः।
आत्माभिमानी निज शैशवेऽपि,
स्वमानहानिं न कदापि सेहे।। ४ ।।

वह बालक शीघ्र ही अपने बचपन को बिता कर बड़ा बलवान और वीर बन गया। वह आत्माभिमानी बालक शिब्बा अपने बचपन में भी अपना अपमान किसी भी दशा में सहन नहीं करता था।

मानो धनं मानवतां सदैव,
मानाय ते प्राणधनं त्यजन्ति।
निर्वाणमाप्नोति हुताशनो हि,
शैत्यं न लोके भजते कदापि।। ५ ।।

मान को ही सब कुछ मानने वाले व्यक्तियों का धन मान ही होता है। वे अपने मान के लिए अपने प्राण-धन को भी त्याग देते हैं। अग्नि समाप्त हो जाती है परन्तु वह ठण्डी कभी नहीं होती।

सम्भूय बालस्त्वचिरङ्किशोर,
उच्छेत्तुकामः स्वरिपून् बभूव।
ततापं तापेन स तोद्यमानः,
शत्रून् स्वकीयान् वृषभानुतुल्यः।। ६ ।।

वह बालक (शिब्बा) कुछ ही दिनों में बढ़कर किशोर हो गया और अपने शत्रुओं को उखाड़ फैंकने की कामना वाला बन गया। वह अपने प्रताप से अपने शत्रुओं को दुःख देता हुआ वृषराशिगत सूर्य के समान तपने लगा।

हुताशनस्य प्रखरं प्रतापञ्जानाति
लोकः स्वयमेव नित्यम्।
स्वयं न वह्निः स्वमुखेन नैजं
लोकान् स्वतेजो वदतीह नूनम्।। ७ ।।

अग्नि के प्रखर तेज को संसार अपने आप ही जान जाता है। अग्नि स्वयं अपने मुख से निश्चय ही अपने तेज के विषय में किसी से कुछ नहीं कहती।

तप्तो जनस्तापनिवारणेच्छु
स्त्रातुं प्रतापाद् यतते स्वगात्रम्।
सन्तापदं वा स विनाशनाय,
यत्नाननेकान् कुरुते सदैव।। ८ ।।

किसी भी ताप से सन्तप्त व्यक्ति अपने शरीर को उस ताप से बचाने का सदा ही यत्न करता है अथवा वह उस ताप देने वाले के विनाश के लिए सयत्न होता है।

असिसंचालनाभ्यासः कुन्तानां क्षेपणं तथा।
तुरगारोहणञ्चास्मै प्रकामं रुरुचे सदा।। ९ ।।

तलवार चलाने का अभ्यास करना, भाला फैंकना एवं घुड़सवारी करना उसे सदा बहुत अच्छे लगते थे।

बालानां सैन्यमायोज्य स्वयं भूत्वा च नायकः।
अकार्षीत्पौरुषेणाऽसौ लीलादुर्गविनाशनम्।। १० ।।

वह शिवाजी बालकों की सेना बनाकर और स्वयं उनका नेता बनकर बड़े पौरुष के साथ बनावटी किलों का विनाश किया करता था।

महाकष्टानि संसोढुं स आसीत्सर्वथा क्षमः।
तस्य संघटितो देहो मन्ये वज्रेण निर्मितः।। ११ ।।

वह शिवाजी महान कष्टों को भी सहने में हर तरह से समर्थ था। उसका सुगठित शरीर ऐसा लगता था मानो वज्र से ही बना हो।

नग्नपृष्ठं समारुह्य वाजिनां बलशालिनाम्।
चकाराऽसौ महावीरोऽश्वारोहणसन्ततिम्।। १२ ।।

बड़े-बड़े बलवान घोड़ों की नंगी पीठ पर बैठकर वह शिवाजी घुड़सवारी का अभ्यास किया करता था।

मातृ-भक्तो महामानी, मातृ-शक्ति प्रपूजकः।
दिने-दिने यशो लेभे, धर्मरक्षाव्रतेरतः।। १३ ।।

मातृ-भक्त, महामानी, मातृशक्ति (नारी जाति) का पूजक, धर्म की रक्षा के व्रत में लगा हुआ वह शिवाजी दिन-प्रतिदिन यश कमाने लगा।

शूरवीरो युयुत्सुश्च, हिन्दूधर्मसुरक्षकः।
प्रकृत्याऽऽसीन्महामानी, शत्रु-सम्मान-मर्दनः।। १४ ।।

वह शिवाजी स्वभाव से ही शूरवीर, युद्ध की लालसा वाला, हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाला, महामानी एवं शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाला था।

शस्त्रसंचालनाभ्यासं तुरगारोहणं तथा।
व्यायामङ्क्रीडनाभ्यासं प्रत्यहं स समाचरत्।। १५ ।।

वह शिवाजी शस्त्र संचालन का अभ्यास, घुड़सवारी, व्यायाम एवं अनेक प्रकार के खेलों का अभ्यास नित्य प्रति किया करता था।

पंक्तिबद्धाः सुयोद्धारः शासिताः शस्त्रसज्जिताः।
सूत्रस्यूतसमाः सर्वे व्यायच्छन्ति निरन्तरम्।। १६ ।।

अनुशासन में रहने वाले, शस्त्रों से सजे हुए, पंक्तिबद्ध सैनिक एक सूत्र में पिरोये हुए से निरन्तर व्यायाम करते रहते थे।

विपद्ग्रस्तो यदादेशो जातः केनाऽपि हेतुना।
विपज्जालं सुयोद्धारश्छिन्दन्ति सबलन्तदा।। १७ ।।

जब कभी देश किसी कारण से विपत्ति में फँस जाता है तो उस समय देश पर छाये विपद जाल को सैनिक ही बलपूर्वक काटते हैं।

स भौंसलाख्यो जनको शिवस्य,
मान्यः सुवीरः प्रबलः प्रतापी।
बीजापुराधीशसभासदस्यः,
स्वाधीशसम्मानपदं वभूव।। १८ ।।

शिवाजी के पिता शाह जी भौंसला जो एक माननीय वीर और प्रबल प्रतापी थे वे बीजापुर के सुल्तान की सभा के सदस्य थे और सुल्तान के सम्मान पात्र व्यक्ति थे।

शाहजी भौंसला प्रख्यः प्रसिद्धो वीरविक्रमः।
शिब्बाख्यमेकदा पुत्रं प्रोवाच सिंहविक्रमम्।। १९ ।।

शाहजी भौंसला नाम के प्रसिद्ध पराक्रमी वीर ने एक बार सिंह के समान पराक्रमी अपने पुत्र शिवाजी से कहा।

इच्छा त्वदीया प्रबला यदि स्यात्,
सुल्तानराज्यस्य विलोकनाय।
साकम्मया त्वं चलितुं समर्थ,
आयाहि शीघ्रं धृतवीरवेशः।। २० ।।

हे पुत्र ! सुल्तान के राज्य को देखने की यदि तेरी प्रबल इच्छा है तो तू मेरे साथ चल सकता है। तू शीघ्र ही अपना वीर भेष बनाकर आ जा।

बीजापुराख्यं नगरं प्रसिद्धम्,
सुल्तानसैन्येन सुरक्षितं तत्।
शिब्बा प्रवीरस्तुरगाधिरुढो,
गन्तुं पितुः पार्श्वमुपाजगाम।। २१ ।।

सुल्तान की सेना से सुरक्षित, बीजापुर नाम के प्रसिद्ध नगर को चलने के लिए, घोड़े पर सवार हुआ वह वीर शिवा शीघ्र ही अपने पिता के पास आ पहुँचा।

घटिष्यमाणां घटनामजानन्,
स हन्तुकामः प्रतिपक्षवीरान्।
शार्दूलपुत्रः शिवनाम धेयः,
सार्धं स्व पित्रा स्वगृहाच्चचाल।। २२ ।।

अपने वैरियों के विनाश की कामना वाला, शार्दूल के समान पराक्रमी पिता का पुत्र, भविष्य में घटने वाली घटनाओं से अनजान शिवाजी अपने पिता के साथ घर से चल दिया।

मृगेन्द्रगामी स च वीरपुत्र,
आत्माभिमानी जनकेन सार्धम्।
मानोन्नतांसः सुविशालवक्षा,
बीजापुराधीशसभां प्रपेदे।। २३ ।।

सिंह के समान मस्त चाल चलने वाला, मान से उन्नत कन्धों वाला, चौड़ी छाती वाला, आत्माभिमानी वह वीर पुत्र शिवाजी अपने पिता के साथ बीजापुर के सुल्तान की सभा में पहुँचा।

सभामागत्य सुल्तान आसनं स्वमुपाविशत्।
उत्थाय सांसदैः सर्वैर्मानस्तस्मै प्रदर्शितः।। २४ ।।

जैसे ही सभा में आकर सुल्तान ने अपना आसन ग्रहण किया वैसे ही सभी सांसदों ने उठकर उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया।

परन्तु वीरसिंहोऽसौ स्वाभिमानी च निर्भयः।
न ननाम शिरस्तस्मै, भावी देशस्य नायकः।। २५ ।।

परन्तु देश के भावी नायक स्वाभिमानी और निर्भय उस वीर सिंह शिवाजी ने उसे अपना सिर उसके लिए नहीं झुकाया।

औद्धत्यं तस्य बालस्य, दृष्ट्वा बीजापुरेश्वरः।
स्वचित्ते चिन्तयामास, नास्तीदं शुभलक्षणम्।। २६ ।।

बीजापुर के सुल्तान ने उस बालक (शिवा) की उस अक्खड़ता को देखकर अपने चित्त में विचारा कि यह अच्छा लक्षण नहीं है।

यथा कथञ्चित् कर्त्तव्यं धृष्टस्यास्य प्रधर्षणम्।
परञ्च साम्प्रतं नास्ति प्रतिकारोऽस्यसाम्प्रतम्।। २७ ।।

जैसे भी हो वैसे ही इस धृष्ट बालक को दबाना ही चाहिए परन्तु इस समय इसका प्रतिकार करना उचित नहीं है।

अन्तर्निगूह्य प्रतिशोधवह्नि
मुपेक्ष्य वृत्तङ्कुटिलान्तरात्मा।
कुचक्र-चक्रं सफलं चिकीर्षुश,
चकार कृत्यं समयं विभाव्य।। २८ ।।

वह कुटिल आत्मा सुल्तान, प्रतिशोध की अग्नि को अपने अन्दर ही छिपाकर और उस

घटना की उपेक्षा करके, अपने षड्यंत्र को सफल बनाने की इच्छा वाले ने, समय को पहचान कर ही कार्य किया।

कृतप्रर्धषो विविधैः प्रकारैः, सुल्तानधूर्तेन स वीरपुत्रः।
प्रख्यातधीरः शिवराजवीरः, धैर्यं न तत्याज न साहसं च।। २९ ।।

उस धूर्त सुल्तान के द्वारा अनेक प्रकार से दबाये जाते हुए, महाधीर, उस वीर पुत्र शिवाजी ने न तो धैर्य छोड़ा और न साहस ही।

दादाजिः कोणदेवश्च, रामदासो गुरुस्तथा।
'जिजाऊ' जननीचास्य, वभूवुर्मार्गदर्शकाः।। ३० ।।

दादा जी कोणदेव, महान गुरु समर्थ रामदास एवं माता जीजाबाई उस (शिवाजी) के मार्गदर्शक थे।

मातुः शुभाशीः करुणा गुरूणां,
स्नेहं प्रगाढं निजवान्धवानाम्।
प्रज्ञा स्वकीया नितरां विशुद्धा,
विपत्पयोधौ तरणी भवन्ति।। ३१ ।।

माता का आशीर्वाद, गुरुजनों की कृपा, अपने बान्धवों का प्रगाढ़ स्नेह एवं अपनी पूर्ण विशुद्ध बुद्धि विपत्ति रूपी सागर में नौका का काम करते हैं।

एतद्बलेनैव स वीरपुत्रो, दिने-दिने सूर्यसमस्तताप।
यथा-यथाऽसावुदयं प्रपेदे, तथा-तथाऽस्यारिगणश्चकम्पे।। ३२ ।।

इन्हीं के बल से वह वीर पुत्र दिनों दिन सूर्य के समान तपने लगा। जैसे-जैसे वह शिवाजी उन्नति करता था वैसे ही वैसे उसके शत्रु उससे भयभीत होते गये।

तोरणदुर्गः

दिवाकरस्यागमनं विभाव्य,
त्रस्ता उलूका जहति प्रमोदम्।
तमेव मोदं दधते वियुक्तां,
निजां प्रियां प्राप्य च चक्रवाकाः।। १ ।।

सूर्य देव के आगमन की सम्भावना करके भयभीत हुए उल्लू प्रसन्नता छोड़ देते हैं और मानो उसी प्रसन्नता को चक्रवाक अपनी बिछुड़ी हुई प्रिया को प्राप्त करके धारण कर रहे हैं।

श्रुत्वैव भूपाः शिवनामधेयं,
त्रस्ता बभूवुः प्रतिवेशिनस्ते।
दिने-दिनेऽसौ शिवराज वीरः,
सह्यो न तेषामभवद् रिपूणाम्।। २ ।।

आस-पास के जितने भी राजा थे वे शिवाजी का नाम सुनकर ही भयभीत हो जाते थे। उन शत्रु राजाओं को वह शिवाजी दिन प्रतिदिन असह्य हो गया था।

स्वभावतोऽपरे भूपाः शिववीरमुपाश्रयन्।
अयस्कान्तमुपायान्ति, पदार्था लोहनिर्मिताः।। ३ ।।

दूसरे अन्य राजा भी अपने आप ही शिवाजी के आश्रय में आ गये। लौह की बनी सभी वस्तुएँ चुम्बक की ओर अपने आप ही खिंच आती हैं।

सर्वान्भूपान्समानीय, शिवराजः सुधीवरः।
निर्ममे विपुलं सैन्यं, शक्ति-भक्ति-बलान्वितम्।। ४ ।।

उस बुद्धिमान शिवाजी ने सभी राजाओं को इकट्ठा करके, शक्ति-भक्ति एवं बल से सम्पन्न एक विशाल सेना का निर्माण किया।

सर्वथा शक्तिसम्पन्नः साहसी लब्धपौरुषः।
उच्चाकांक्षो महावीरस्तताप सूर्यसन्निभः।। ५ ।।

सभी प्रकार से शक्ति सम्पन्न, साहसी, पुरुषार्थ सम्पन्न, महत्वाकांक्षी, महावीर शिवाजी सूर्य के समान प्रतापी बन गये।

प्रतिपक्षगतान्दुर्गान् जितवान् क्रमशो वली।
अधिकृत्य विशालाँस्तान्जात स्तेषां प्रशासकः।। ६ ।।

उस बलवान शिवाजी ने शत्रुओं के हाथ में गये हुए किलों को एक-एक करके जीतना शुरू किया और उन पर अपना अधिकार करके उनका प्रशासक बन गया।

षोडशवर्षदेशीयश्चण्डांशुश्चण्डुविक्रमः।
तोरणाख्यम्महादुर्गं विजेतुमाक्रमीद् वली।। ७ ।।

तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य के समान प्रचण्ड पराक्रमी, सोलह वर्ष की आयु वाले उस शिवाजी ने 'तोरण' के प्रसिद्ध किले को जीतने के लिए हमला कर दिया।

शस्त्रास्त्रवीरभूषाभिः सज्जितः सर्वथायुधैः।
मन्ये कोऽपि समायाति, सक्ष्वेडं सिंहशावकः।। ८ ।।

शस्त्रास्त्रों एवं वीरवेश से तथा सभी प्रकार के उपयोगी आयुधों से सजे हुए वीर शिवाजी ऐसे लगते थे मानो कोई सिंह का बच्चा दहाड़ता हुआ आ रहा हो।

आग्नेयास्त्रगुलिकाभिः सज्जिताः सैनिका रणे।
शत्रुगात्राणि विध्यन्ति, प्रापयन्ति यमालयम्।। ९ ।।

गोला बारूद व बन्दूक की गोलियों से सजे हुए सैनिक रण भूमि में शत्रुओं के शरीर बींध रहे थे और उन्हें यमलोक पहुँचा रहे थे।

विशीर्णदेहान्सुभटान् धरण्याम्,
निपातयन्वीरवरः स पापान्।
भीमां भवानीं स्वकरे दधानो,
बभ्राम युद्धे कुपितः शिवाजिः।। १० ।।

वह वीरवर शिवाजी क्षत-विक्षत शरीर वाले, पापकर्मा, यवन सैनिकों को भूमि पर गिराता हुआ, भवानी नाम की भयंकर तलवार को हाथ में लिए हुए कुपित हुआ युद्ध भूमि में घूम रहा था।

कारुण्यहीनस्तु कृपाणपाणी,
रणोद्भटाँस्ताँस्सुभटान् प्रवीरः।
छिन्दन् रणे भीम मुखीङ्करालाम्,
भीमां भवानीं तरसा तुतोष।। ११ ।।

हाथ में तलवार लिए हुए, करुणा से हीन, वीर शिवाजी उन रण बाँकुरे यवन सैनिकों को काटते हुए भयंकर धार वाली, कराल भयानक भवानी नाम की तलवार को प्रसन्न कर रहा था।

रौद्रस्वरूपं सुभटा विलोक्य,
शिवस्य जाता हतपौरुषास्ते।
क्रुद्धम्मृगेन्द्रं हि मृगा विलोक्य,
दैन्यं भजन्ते वनजा निरीहाः।। १२ ।।

शिवाजी के रौद्र स्वरूप को देखकर यवन सैनिक पौरुष विहीन हो गये। क्रुद्ध सिंह को देखकर निरीह बने वन के पशु दीन हो ही जाते हैं।

प्राणान्स्वकीयान्परिरक्षयन्तो,
व्यग्राः समग्राः खलु भीरवस्ते।
योद्धुं न शक्ताः समरांगणं तत्,
विहायशीघ्रं विरता बभूवुः।। १३ ।।

अपने प्राणों की रक्षा करते हुए वे सभी कायर सैनिक व्यग्र हो उठे और युद्ध करने में असमर्थ वे शीघ्र ही युद्धभूमि छोड़कर युद्ध से विमुख हो गये।

केचिद्विहाय शस्त्राणि, शिरस्त्राणानि चापरे।
एके पराजिता युद्धात् कान्दिशीकाः पलायिताः।। १४ ।।

कुछ कायर सैनिक अपने शस्त्र छोड़कर, कुछ अपने सिर पर पहने जाने वाले टोपों को छोड़कर और कुछ बुरी तरह घायल युद्ध भूमि से भाग खड़े हुए।

सैनिकास्तुन्दिला केचिल्लम्बकूर्चास्तथाऽपरे।
प्राणलोभपराश्चान्ये येन केन पलायिता।। १५ ।।

कुछ मोटे पेट वाले तथा कुछ लम्बी दाढ़ी वाले और कुछ अपने प्राणों को बचाने के लोभ से भरे हुए सैनिक युद्ध भूमि से जैसे तैसे भाग खड़े हुए।

विघ्नैर्विहीनं शिवराजवीराः।
कोटस्य मार्गं प्रविलोक्य हृष्टाः।
खड्गान् करालान् स्वकरे दधानाः।
दुर्गेऽधिकारं विदधुः सुखेन।। १६ ।।

शिवाजी के वीर सैनिक किले के मार्ग को निर्विघ्न देखकर प्रसन्न हो उठे और भयंकर तलवारों को अपने हाथों में लिये हुए उन वीर सैनिकों ने किले पर आसानी से अधिकार कर लिया।

मत्वा हितं प्राणसुरक्षणं तद्,
दुर्गाधिपः प्लायत भीतभीतः।
स मावलेन्द्रः शिवराजनामा,
वीराग्रणी दुर्गपतिर्बभूव।। १७ ।।

उस किले का अधिपति अपने प्राणों की रक्षा करना ही हितकर मानकर, डरा हुआ वहाँ से भाग गया। मावलों का स्वामी, शिवाजी नाम का वीराग्रणी उस किले का स्वामी बन गया।

दुर्गं विधित्सुः सुदृढं विशालं,
दुर्गे शिवोऽसौ वसतिञ्चकार।

भूमिङ्खनन्तः शिवराजभृत्या,
धरोदरात् स्वर्णनिधानमापुः ।। १८ ।।

उस किले को सुदृढ़ और विशाल बनाने की कामना वाले उस शिवाजी ने उसी किले में अपना आवास बनवाया। किले की भूमि की खुदाई करते हुए, शिवाजी के सेवकों ने भूमि के नीचे से सोने का विशाल भण्डार प्राप्त किया।

आकण्ठपूर्णान् कलशान् सुवर्णैः,
सम्प्राप्य वीरः सधनो वभूव।
मित्रेषु भृत्येषु च सैनिकेषु,
विमुक्तहस्तो व्यतरद्धनानि ।। १९ ।।

सोने से कण्ठ तक भरे हुए कलशों को प्राप्त करके वह वीर शिवाजी धनवान बन गया। फिर तो शिवाजी ने उस धन को अपने मित्रों, सेवकों एवं सैनिकों में मुक्तहस्त होकर बाँटा।

श्रीभिर्वृतोऽसौ शिवशक्ति-भक्तः,
श्रियासमृद्धः शममाप्रपेदे।
श्रीलोऽशयण्डः शिवमीहमानः,
श्रियः सुपात्रत्वमवाप वीरः ।। २० ।।

धन सम्पत्ति के द्वारा वरण किया हुआ, मातृ-शक्ति (देवी) का भक्त वह शिवाजी श्री सम्पन्न हुआ, शान्त हो गया। कल्याण की कामना करने वाला, शोभावान, निद्रा के वशीभूत न रहने वाला (सदा जागरुक) वह शिवाजी लक्ष्मी का कृपा पात्र बन गया।

सम्प्राप्य लक्ष्मीं विजिगीषमानः,
सैन्यं स्वकीयं द्विगुणञ्चकार।
सामर्थ्यशीलो जितवाननेकान्,
दुर्गान् विशालान् क्रमशो रिपूणाम् ।। २१ ।।

शत्रुओं को जीतने की कामना करते हुए वीर शिवाजी ने अतुल धन प्राप्त करके अपनी सेना का दूना विस्तार किया। उस समर्थ शिवाजी ने फिर तो शत्रुओं के अनेक विशाल दुर्गों को एक-एक करके जीतना प्रारम्भ कर दिया।

उन्नतेः पथमारुढः शत्रुमानविमर्दनः।
शत्रुनेत्रप्रपीडाकृत् कण्टकोपमताङ्गतः ।। २२ ।।

उन्नति के पथ पर आगे बढ़ता हुआ, शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाला वह शिवाजी, शत्रुओं की आँखों में सदा खटकने वाला (पीड़ा देने वाला) काँटा ही बन गया।

अपजलान्तः

'उलिया' बेगमेत्याख्या, विख्याता यवनात्मजा।
शिवराजभयत्रस्ता, न लेभे सुखमन्वहम्।। १ ।।

यवन वंश में जन्म लेने वाली, प्रसिद्ध 'उलिया' नाम वाली बेगम शिवा जी के भय से त्रस्त किसी भी समय चैन नहीं ले पाती थी।

शङ्किताऽसौ सदाऽतिष्ठद् बीजापुरप्रशासिका।
शिव-शक्ति-विनाशाय किङ्किन्नाचरदीप्सितम्।।२ ।।

बीजापुर की प्रशासिका वह उलिया बेगम शिवाजी से सदा शंकित बनी रहती थी। शिवाजी की शक्ति को समाप्त करने के लिए उसने क्या-क्या मन चाहे कार्य नहीं किये।

सभायामेकदागत्य व्याजहार स्व सांसदान्।
भविष्यति स शीर्षस्थोयो हन्याच्छिवमूषकम्।। ३ ।।

एक दिन उस उलिया बेगम ने सभा में आकर अपने सभासदों से कहा—जो भी व्यक्ति उस शिवाजी रूपी चूहे को मार देगा वह सभा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करेगा।

जीवितं वा मृतं वापि बद्ध्वा तं गिरिमूषकम्।
आनेष्यति ममाग्रे यो, लप्स्यतेऽसौ महत्पदम्।। ४ ।।

जो भी उस पहाड़ी चूहे को जीवित या मरा हुआ बाँधकर मेरे सामने लायेगा वह महत्वपूर्ण पद प्राप्त करेगा।

तच्छ्रुत्वाऽपजलः खानः कृतधीः शिवनिग्रहे।
प्रतिज्ञाय सभामध्ये प्रतस्थे स्वेष्टसिद्धये।। ५ ।।

ऐसा सुनकर शिवाजी को पकड़ने का विचार बनाये हुए अफजल खान नाम का सरदार भरी सभा में प्रतिज्ञा करके अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए वहाँ से चल दिया।

यथा दुष्टो महापापी न वेत्ति कर्मजं फलम्।
तथाऽसौ प्राचलद् धूर्तः परिणामे विमुग्धधीः।। ६ ।।

जिस प्रकार महापापी दुष्ट व्यक्ति अपने कर्मों के फल को नहीं जानता, उसी प्रकार परिणाम को न जानने वाला धूर्त वहाँ से चल दिया।

प्रथमं तेन दुष्टेन मर्दिता देवभूमयः।
भवान्यास्तुलजादेव्या मन्दिरं भग्नमाचरत्।। ७ ।।

पहले तो उस दुष्ट ने देवभूमियों को नष्ट किया और देवी तुलजा भवानी के मन्दिर को खण्डित किया।

प्रतिमाः खण्डितास्तेन योषितश्च प्रदूषिताः।
गावो विप्रास्तथा देवाः त्रासिता भ्रंशिता पथि।। ८ ।।

उस दुष्ट ने मार्ग में प्रतिमाओं को तोड़ा, स्त्रियों को दूषित किया, गौ-ब्राह्मणों को सताया तथा देवताओं को भ्रष्ट किया।

आसीत्तस्य तु विश्वासः शिवोऽसौ धर्मरक्षकः।
परित्रातुमिमान्नूनं वहिर्दुर्गाद्भविष्यति।। ९ ।।

उस अफजल खान का तो यह विश्वास था कि धर्म की रक्षा करने वाला वह शिवाजी इन सबकी रक्षा करने के लिए अवश्य ही किले से बाहर आयेगा।

दुर्गस्थं कूटनीतिज्ञं परापरविचारकम्।
अजेयं सर्वदा शत्रुं मन्यन्ते सुधियो जनाः।। १० ।।

बुद्धिमान व्यक्ति, अच्छे बुरे का विचार करने वाले, कूटनीति का ज्ञान रखने वाले, किले में सुरक्षित शत्रु को अजेय ही मानते हैं।

मांसखण्डं यथावीक्ष्य, मीनो धावति सत्वरम्।
तथैवाऽपजलो धूर्तो दधावान्धः शिवं प्रति।। ११ ।।

जिस प्रकार मछली माँस खण्ड को देखकर उसकी ओर तेजी से दौड़ती है उसी प्रकार वह धूर्त मदान्ध अफजल खान भी शिवाजी की ओर तेजी से चल दिया।

दम्भी सोऽपजलः खानो मिथ्यावादी विकत्थनः।
नीचाशयः सुरद्रोही, हिन्दुधर्मविनाशकः।। १२ ।।

प्रपंची कपटी धूर्तश् शिवाय द्रोहधीः कुधीः।
विषे सुधां हि सन्दर्श्य, दूतं प्रेषितवान्निजम्।। १३ ।।

उस दम्भी, मिथ्यावादी, आत्म प्रशंसक, नीच विचारों वाले, देवताओं से द्रोह करने वाले, हिन्दू धर्म के विनाशक, षड्यंत्रकारी, कपटी, धूर्त, शिवाजी के प्रति द्रोह रखने वाले, दुर्बुद्धि अफजल खान ने, विष में अमृत का प्रदर्शन करके अपना एक दूत शिवाजी के पास भेजा।

कृष्णजी भास्करो नामा लब्धोत्कोचः कुमार्गणः।
सन्धिप्रस्तावमादाय शिवराजमुपागमत्।। १४ ।।

उत्कोच में धन ग्रहण करने वाला, कुमार्गगामी, कृष्ण जी भास्कर नाम वाला व्यक्ति सन्धि प्रस्ताव लेकर शिवाजी के पास पहुँचा।

मार्गे गच्छन्स दुष्टात्मा, लब्धोत्कोच विलुप्तधीः।
शिववृक्षस्य विच्छेत्ता, लक्षितः शिवसेवकैः।। १५ ।।

घूस का धन प्राप्त करने के कारण विनष्ट बुद्धिवाला, शिव रूपी वृक्ष को नष्ट करने वाला वह दुष्टात्मा (भास्कर) मार्ग में ही शिवाजी के गुप्तचरों द्वारा ताड़ लिया गया।

शिवं यावदुपागच्छेत्तावद्गुप्तचरैर्जनैः।
रहस्यं तस्य विज्ञातं तेन ते न च लक्षिताः।। १६ ।।

वह कृष्ण जी भास्कर अफजल खान का सन्देश लेकर जब तक महाराज शिवाजी के पास पहुँचे तब तक शिवाजी के गुप्तचरों ने उसका सारा भेद जान लिया और उसने उन्हें जाना भी नहीं।

रहस्यं गोपनीयं यत् पत्रके निहितम्महत्।
तत्सर्वं शिववीराय, सेवकैस्तैर्निवेदितम्।। १७ ।।

उस दूत के पास उपलब्ध पत्र में जो बहुत ही गोपनीय रहस्य था वह सब शिव वीर के सेवकों ने शिवाजी तक शीघ्र ही पहुँचा दिया।

विश्वासघाती कपटी कुचक्री,
नीचाशयो निम्नकुले प्रसूतः।
हन्तुम्ममहाराष्ट्रसुतं नृसिंहम्,
मिथ्याभिमानी शिविराच्चचाल।। १८ ।।

विश्वासघाती, कपटी, षड्यंत्रकारी, नीच विचारों वाला, निम्न कुल में जन्म लेने वाला, मिथ्याभिमानी अफजल खान, मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी, महाराष्ट्र के सपूत महाराज शिवाजी की हत्या करने के लिए अपने शिविर से चल दिया।

विश्वासमुत्पाद्य शिवं प्रवीरं,
तं शस्त्रहीनं स्वजनैर्विहीनम्।
शक्ष्ये गृहीतुं नरसिंहधीरम्,
इति स्म चक्रे हृदि कल्पनां सः।। १९ ।।

मैं शिवाजी का अपने में विश्वास उत्पन्न कर उस वीर शिवाजी को शस्त्रहीन एवं उसके

साथियों से विहीन करके, मनुष्यों में सिंह के समान धीर शिवाजी को पकड़ सकूँगा। इस प्रकार कल्पना करता हुआ वह अफजल खान मार्ग में चला जा रहा था।

आदाय काँश्चिन्निजरक्षकान्स,
गुप्तानि शस्त्राणि निधाय वस्त्रे।
वामेन हस्तेन मुहुः स्पृशन् स्वं,
कूर्चं स धूर्ताधिपतिश्चचाल।। २० ।।

वह धूर्ताधिपति अफजल खान अपने कुछ निजी रक्षकों को लेकर और वस्त्रों में गुप्त शस्त्र छिपाकर बायें हाथ से अपनी दाढ़ी को बार-बार स्पर्श करता हुआ आगे बढ़ चला।

जीजात्मजन्मा सुतरां सतर्को,
विज्ञाय धूर्तस्य मनः शिवाजिः।
अंकागतं प्राप्य मुमूर्षुमाणम्,
कूर्चं तुसंस्पृश्य मुदा जहास।। २१ ।।

पूर्ण सतर्क, जीजाबाई का पुत्र शिवाजी उस धूर्त के मन की बात जानकर और मरने की इच्छा वाले उस अफजल खान को अपनी गोदी में आया हुआ जानकर, अपनी दाढ़ी को स्पर्श करके प्रसन्नता से हँस पड़ा।

सिंहो यथा वन्यपशून् विलोक्य,
क्षोभं न चित्ते कुरुते प्रमोदम्।
नृसिंहवीरो यवनान् विलोक्य,
मोदं तथाऽसावतुलं प्रपेदे।। २२ ।।

जिस प्रकार सिंह वन में रहने वाले पशुओं को देखकर अपने मन में किसी प्रकार की विकृति नहीं लाता अपितु प्रसन्न होता है उसी प्रकार नृसिंह वीर शिवाजी यवनों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये।

वीरान् स्वकीयान्निजदेशभक्ता-
नाहूय वीरः प्रबलः प्रतापी।
पूर्णं महाराष्ट्रपतिर्जहास,
भूत्वा गभीरः पुनरित्थमूचे।। २३ ।।

महाराष्ट्र के नायक प्रबल प्रतापी वीर शिवाजी अपने देशभक्त वीरों को बुलाकर पहले तो हँसे और फिर गम्भीर होकर इस प्रकार बोले।

शृणुध्वं देश भक्ता मे, यूयम्मे जीवनं ध्रुवम्।
विना युष्मद् न शक्ष्येऽहं पराजेतुं रिपुं निजम्।। २४ ।।

मेरे देशभक्त वीरो सुनो ! निश्चय ही तुम मेरे प्राण हो। तुम्हारे बिना मैं अपने वैरी को जीत नहीं सकूँगा।

मिथ्याभिमानी कुपथानुगामी,
बीजापुरीयः कुलशीलहीनः।
विश्वासघाती कपटीकुचक्री,
सोऽभ्येति धूर्तः सह सैनिकैस्तु।। २५ ।।

साथियो ! झूठा अभिमान करने वाला, कुमार्ग पर चलने वाला, कुल एवं शील भ्रष्ट, विश्वासघाती, कपटी, षड्यंत्रकारी, बीजापुर का रहने वाला वह धूर्त अफजल खान अपने सैनिकों के साथ इधर को ही आ रहा है।

सर्वेऽप्रमत्ता निजलक्ष्यसक्ता,
देशानुरक्ता जननी सुभक्ताः।
स्वातन्त्र्यसक्ता गतसाध्वसाश्च,
शस्त्रैः सुगुप्तैर्ननु सन्तु नद्धाः।। २६ ।।

आप सब, अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण सावधान, देश के प्रति अनुराग रखने वाले, मातृ-भक्ति के भक्त, स्वतंत्रता के लिए सब कुछ करने के लिए कटिबद्ध, निर्भय हुए गुप्त शस्त्रों से सज्जित हो जाओ।

उच्चस्थलं यत्र दलद्वयस्य,
वीराः समेत्स्यन्त्यभितः समस्ताः।
तत्रैव यूयं मृगराजतुल्याः,
तिष्ठेत संकेत जिघृक्षया नः।। २७ ।।

जिस उच्च स्थल पर दोनों दलों के वीर एकत्र होंगे, तुम सब वहीं उस स्थल को घेर कर, हमारे संकेत की ओर ध्यान दिये हुए, सिंह के समान सावधान होकर बैठ जाओ।

सर्वे सतर्का युवकाः प्रवीरा,
व्याप्यस्थलं तत्परितो निषण्णाः।
संकेतमात्रेण विधातुकामाः,
वधं रिपूणाञ्च शिवस्य रक्षाम्।। २८ ।।

संकेत मिलते ही शत्रुओं का वध एवं महाराज शिवाजी की रक्षा करने के लिए उद्यत वे सभी युवक, वीर, पूर्ण सतर्क हुए उस उच्च स्थल को चारों से घेर कर बैठ गये।

ते देशभक्ता दृढनिश्चयस्थाः,
प्रोद्धर्तुकामा निजजन्मभूमिम्।

स्वप्राणरक्षामविचारयन्त
तिष्ठन्ति नित्यं स्व सुखान्युपेक्ष्य ।। २९ ।।

अपनी जन्मभूमि का उद्धार करने के इच्छुक, दृढ़ निश्चय वाले वे देशभक्त युवक, अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुए और अपने सभी सुखों की उपेक्षा करके वहाँ जम गये।

जीजात्मजः पूर्णसतर्कसिंहः,
सार्धं निजैर्वीरवरैर्वयस्कैः ।
प्रागेव लेभे मुगलात्पदं
च्छत्रोः प्रहारानफलान् विधातुम् ।। ३० ।।

पूर्ण सतर्क सिंह के समान, जीजाबाई का पुत्र शिवाजी अपने चुने हुए वीर साथियों के साथ, शत्रु के प्रहारों को विफल करने के लिए उस मिलन स्थान पर मुगल (अफजल खान) से पहले ही पहुँच गया।

स्वषड्यंत्र-फलापेक्षी स्वार्थसिद्धिप्रसाधकः ।
दम्भी सोऽपजलः खानः सन्धिस्थानमुपागमत् ।। ३१ ।।

अपने षड्यंत्र के परिणाम की अपेक्षा करने वाला, स्वार्थ-सिद्ध में तत्पर वह दम्भी अफजलखान सन्धि (मिलन) स्थल पर पहुँचा।

मोहम्मदीयमालोक्य महाराष्ट्र-महीश्वरः ।
आदर्शयत्समुत्थाय, कुशलः स्वविनम्रताम् ।। ३२ ।।

व्यवहार कुशल, महाराष्ट्र के राजा शिवाजी ने मुहम्मद के अनुयायी अफ़जल को देखकर, खड़े होकर अपनी विनम्रता प्रदर्शित की।

शिवं पूर्वागतं वीक्ष्य, मत्वातञ्च भयाकुलम् ।
उपेक्ष्याऽसौ महावीरं प्राचलद् गर्वपूरितः ।। ३३ ।।

मिलन स्थल पर शिवाजी को पहले आया देखकर और उसे भयभीत जानकर, वह अफजल खान उस महावीर की उपेक्षा करके बड़ी अकड़ के साथ आगे को चला।

हसन्तौ कूटनीतिज्ञावन्योन्यालिङ्गनोत्सुकौ ।
विस्तारितभुजौ तत्र सेवकैरवलोकितौ ।। ३४ ।।

उस स्थल पर वे दोनों ही कूटनीतिज्ञ, हँसते हुए, एक दूसरे का आलिंगन करने के लिए, भुजा फैलाये हुए, सेवकों ने देखे।

प्रवीरा रुद्धनिःश्वासाः सर्वतो दत्तदृष्टयः ।
विच्छेत्तुं निजमाखेटं खड्गहस्ता उपाविशन् ।। ३५ ।।

शिवाजी के वीर सैनिक, साँस रोके हुए, चारों ओर से दृष्टि गड़ाये हुए, हाथ में तलवार लिये, अपने शिकार को चीर-फाड़कर समाप्त करने के उद्देश्य से सावधान बैठे हुए थे।

आश्लिष्यमाणेन तु मौगलेन,
धृतः शिवो वामकरेण कण्ठे।
वामेतरेणच्छूरिकाङ्कराला
मादाय धूर्तेन कृतः प्रहारः।। ३६ ।।

आलिंगन किये जाते हुए उस मुगल (अफजल खान) ने शिवाजी को बायें हाथ से कण्ठ से जकड़ लिया और दाँये हाथ से भयंकर छुरी निकाल कर उस धूर्त ने शिवाजी पर प्रहार किया।

पूर्वं प्रहरणादेव सतर्कः सिंहविक्रमः।
निजांके स्थितिमापन्नं हठात्प्रापीडयच्छिवः।। ३७ ।।

सिंह के समान विक्रमी, उस सतर्क शिवाजी ने, उस दुष्ट के प्रहार करने से पूर्व ही अपने अंक में फँसे हुए उस दुष्ट को जोर से दबोच लिया।

दुष्टङ्कण्ठगतप्राणं वक्तुं किमपि न क्षमम्।
क्षणमेकमदत्वाऽसौ धृतवाँस्तज्जिघांसया।। ३८ ।।

कण्ठ में प्राण आये हुए, कुछ भी कहने में असमर्थ, उस दुष्ट को क्षण मात्र का भी अवसर न देकर उसे मारने की इच्छा से पकड़ लिया।

व्याघ्रनखेन चास्त्रेण, निशितेन त्वरितं शिवः।
पृष्ठं विदार्य निर्जीवं पातयाभास तं भुवि।। ३९ ।।

शिवाजी ने बड़ी फुर्ती और तेजी से अपने तेज धार वाले बघनखा नाम के अस्त्र से उस दुष्ट की पीठ को चीर कर उसे भूमि पर पटक दिया।

वक्षः स्वशत्रोरवदारयन्तं, दृष्ट्वा शिवं व्याघ्रनखेन तत्र।
वीरा व्यजानन्त नृसिंह रूपं, हरिं स्वयं दैत्यपतिं दलन्तम्।। ४० ।।

वहाँ पर शिवाजी को अपने शत्रु की छाती को अपने बघनखे से चीरते हुए देखकर वीरों ने जाना कि भगवान हरि स्वयं नृसिंह रूप में दैत्यराज का दमन कर रहे हैं।

उत्क्षिप्य कुन्ते मृतकं तमेकः,
क्षिप्रं जनान्दर्शयति स्म वीरः।
आलोक्य तं शोणितदिग्धदेहं,
क्षोभश्च हर्षश्च-जनेष्वभूताम्।। ४१ ।।

एक वीर ने शीघ्र ही उस मृतक को अपने भाले पर उठाकर दूसरों को दिखा दिया। रक्त से लथपथ उस शरीर को देखकर मनुष्यों में क्षोभ और हर्ष एक साथ ही व्याप्त हो गये।

विदीर्णं तं गतप्राणं, विलोक्य निजनायकम्।
विवर्णास्या मृतप्रायाः सञ्जाता यवनात्मजाः ।। ४२ ।।

चिथड़े बने एवं मरे हुए, अपने नायक को जान कर सारे यवन पीले पड़ गये और मरे हुए के ही समान हो गये।

नैकोऽप्यरिषु शेषः स्यादिति निर्धार्यचेतसा।
जहि जहीति साम्रेडं, वदन्तः शिव सैनिकाः ।। ४३ ।।

त्वरमाणाः समुत्प्लुत्य, सुभटाः शत्रुमर्दनाः।
सहसा प्रकटीभूय, सर्वान्मृत्युमुखेऽनयन्।। ४४ ।।

शत्रुओं में से एक भी न बचे ऐसा मन में निश्चय करके, मारो-मारो, बार-बार ऐसा पुकारते हुए, शत्रु का दलन करने वाले, युद्ध-चतुर शिवाजी के सैनिकों ने जल्दी उछलकर और अचानक प्रकट होकर उन सभी यवन सैनिकों को काल के गाल में पहुँचा दिया।

एकोऽपि जीवितस्तत्र नैवाऽसीद् यवनात्मजः।
यमराजपुरं प्रापुः सर्वेऽपि तत्सहानुगाः।। ४५ ।।

उस समय वहाँ एक भी मुगल सैनिक जीवित नहीं बचा। उसके साथ जितने भी थे वे सभी यमलोक को सिधार गये।

विश्वासघातिन्येतस्मिन् 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'।
नीतिज्ञेषु यशोलेभे, शिवराजो महीश्वरः।। ४६ ।।

इस विश्वासघाती से, दुष्ट के साथ दुष्टता का ही व्यवहार करना चाहिए, इस नीति के अनुसार महाराज शिवाजी ने नीतिज्ञ पुरुषों में यश प्राप्त किया।

साफल्यं शिवराजाय, बभूव फलदायकम्।
प्रदेशोऽधिकृतस्तेन, 'पन्हाला' नाम दक्षिणे।। ४७ ।।

वह सफलता शिवाजी के लिए बहुत ही फलदायक रही। उन्होंने दक्षिण में 'पन्हाला' नाम का स्थान अपने अधिकार में कर लिया।

शिवराज-विनाशाय बीजापुर प्रशासकैः।
विशाला सुदृढा सेना त्रिगुणा प्रेषिता ततः।। ४८ ।।

फिर तो बीजापुर के शासकों ने शिवाजी के विनाश के लिए तिगुनी विशाल सेना भेजी।

प्रतिरोद्धुं हितत्सैन्यं शिवसेना समाययौ।
बीजापुरोपकण्ठोर्वीं जिग्ये सैन्यं निवार्य तत्।। ४९ ।।

बीजापुर की सेना को रोकने के लिए शिवाजी की सेना आगे आयी और उस सेना को रोककर बीजापुर के पास की भूमि को भी जीत लिया।

सैनिकैः शिववीरस्य सहसैव करे कृतम्।
राजापुरं दामलञ्चेत्य प्रयासं पुरद्वयम्।। ५० ।।

शिवाजी के वीर सैनिकों ने यकायक बिना प्रयास के ही राजापुर और दामल नाम के दो नगर अपने अधिकार में कर लिये।

वर्षमेकम्महद्युद्धं सञ्जातं सेनयोर्द्वयोः।
प्रास्तावीदन्ततः सन्धिं विवशो यवनेश्वरः।। ५१ ।।

एक वर्ष तक दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध होता रहा। अन्ततः विवश होकर यवनराज ने सन्धि का प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया।

सन्धिप्रस्तावमात्रेण लब्धद्विगुणपौरुषः।
प्रदेशेलब्धसम्मानः शिवोऽभूच्छासको महान्।। ५२ ।।

सन्धि के प्रस्ताव मात्र से, दुगुने पौरुष वाले शिवाजी अपने प्रदेश में सम्मान प्राप्त महान शासक बन गये।

७

शास्तिखान-पराभवः

दिल्लीश्वरोऽसौ नवरंगजीवः,
श्रुत्वा महाराष्ट्र-महीश्वरस्य।
राज्यप्रसारं कथितं स्वदूतैः,
दिल्ली स्थितो राज्यसुखन्नलेभे।। १ ।।

दिल्लीपति वह औरंगजेब महाराष्ट्र के महाराज शिवाजी के राज्य विस्तार की बात अपने दूतों से सुनकर, दिल्ली में रहते हुए भी राज्य के सुख का उपभोग नहीं कर पा रहा था।

ईर्ष्याग्निदग्धो मुगलेश्वरोऽसौ,
निद्रासुखं नैव कदापि लेभे।
"सिंहः कथं स्यान्नखदन्तहीनः",
इत्येव चिन्तां स सदा सिषेवे।। २ ।।

ईर्ष्या की अग्नि से जलता हुआ वह मुगल बादशाह औरंगजेब, कभी भी सुख की नींद न सो सका। उसे तो सदा यही चिन्ता लगी रहती थी कि शिवाजी रूपी सिंह को नख और दन्तहीन किस प्रकार बनाया जाये।

उपायश्चिन्तयामास धर्मान्धो मुगलेश्वरः।
प्रतिरोद्धुं पराजेतुम्महाराष्ट्रजनेश्वरम्।। ३ ।।

धर्म से अन्धे बने मुगल बादशाह औरंगजेब ने महाराष्ट्र के महाराज शिवाजी को दबाने और हराने का एक उपाय सोचा।

'शास्तिखान' इतिख्यातं, सांसदं सैन्यनायकम्।
राज्यपालपदे तत्र नियुयोज महीपतिः।। ४ ।।

बादशाह औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ नाम के प्रसिद्ध, अपने सांसद एवं सेनानायक को वहाँ (दक्षिण में) राज्यपाल पद पर नियुक्त कर दिया।

शून्य-शास्त्र-रस-ब्रह्म-वत्सरे यवनाधिपः।
प्राहिणोद् दक्षिणं वीरं, धूर्तं तं निजबान्धवम्।। ५ ।।

यवन बादशाह औरंगजेब ने अपने उस रिश्तेदार धूर्त वीर शाइस्ता खाँ को सन् १६६० में दक्षिण की ओर भेजा।

मौगलः साहसी क्रूरो, भूत्वादक्षिणशासकः।
राष्ट्रोपान्तमुपागम्य, चकार युद्ध-घोषणाम्।। ६ ।।

दक्षिण के शासक बने हुए उस क्रूर, साहसी, मुगल शाइस्ता खाँ ने महाराष्ट्र प्रान्त के पास पहुँच कर शिवाजी के प्रति युद्ध की घोषणा कर दी।

परञ्च कूटनीतिज्ञो दूरदर्शी शिवः प्रभुः।
विपक्षं सबलं ज्ञात्वा नाऽजुहोत्सैनिकान्निजान्।। ७ ।।

परन्तु दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ महाराज शिवाजी ने विपक्ष को अपने से अधिक बलवान जानकर अपने सैनिकों को युद्ध में नहीं झोंका।

साम्प्रतं साम्प्रतं नास्ति, शत्रूणां प्रतिरोधनम्।
वैरिणो दण्डयिष्यामि समयं प्राप्य सत्वरम्।। ८ ।।

इस समय शत्रुओं का प्रतिरोध करना उचित नहीं है। समय (मौका) पाकर शीघ्र ही इन वैरियों को सबक सिखाऊँगा।

'विमृश्यकारिणो नूनं, लभन्ते विजयश्रियम्।'
इति निश्चित्य वीरास्ते, नाऽयुध्यन्त यथार्थतः।। ९ ।।

सोच समझ कर कार्य करने वाले व्यक्ति निश्चित ही विजय प्राप्त करते हैं। ऐसा विचारकर उन मराठा वीरों ने वास्तव में युद्ध नहीं किया, केवल युद्ध का दिखावा ही करते रहे।

केषुचिद्रणभागेषु मरट्ठावीरसैनिकाः।
यथाशक्ति हि संयुध्य, जयलाभं न लेभिरे।। १० ।।

युद्धस्थल के कुछ भागों में मराठा वीर सैनिक अपनी पूरी शक्ति से युद्ध करके भी जयलाभ न पा सके।

प्रयत्नशीलः सबलोऽपि वीरः,
विधौविरुद्धे कुशलः प्रतापी।
सामर्थ्यहीनम्मशकं निरीहं,
हन्तुं कदापि क्षमते न लोके।। ११ ।।

भाग्य के विरुद्ध होने पर कुशल, प्रतापी, प्रयत्नशील, बलवान वीर भी सामर्थ्यहीन छोटे से निरीह मच्छर को मारने में समर्थ नहीं होता।

विपद्ग्रस्तो नरः कार्यं धिष्णया साधयेत् स्वकम्।
अनुकूले विधौ भूयः पूर्वां स्थितिमवाप्नुयात्।। १२ ।।

विपत्ति में फँसे व्यक्ति को अपना कार्य बुद्धिमानी से सिद्ध कर लेना चाहिए। भाग्य के अनुकूल होने पर फिर अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त कर ले।

इत्थं विचार्य वीरोऽसौ, देशकालविचारकः।
मत्वाऽपसरणं श्रेयोऽपससार ससैनिकः।। १३ ।।

इस प्रकार विचार कर देश और काल का विचार करने वाला वह वीर शिवाजी पीछे हटना ही श्रेयस्कर मानकर अपने सैनिकों सहित पीछे हट गया।

स्वभटान् कूटनीतिज्ञो रक्षमाणः निरन्तरम्।
स्थलँल्लब्धवान् वीरोऽपसरन् हितसाधकम्।। १४ ।।

वह कूटनीतिज्ञ वीर शिवाजी निरन्तर अपने सैनिकों को बचाता हुआ, पीछे हटते-हटते उस स्थान पर पहुँच गया जो उनके लिए उपयुक्त था।

शास्तिखानचभूर्नूनं बभूव बलवत्तरा।
तया पराजिता जाता मरट्ठा देशरक्षकाः।। १५ ।।

वस्तुतः शाइस्ता खाँ की सेना मराठों की सेना से अधिक शक्तिशाली थी। अतः देशरक्षक मराठा वीर उससे हार गये।

नायं पराजयस्तेषामासीदेका प्रवञ्चना।
स आसीत्सैन्यविन्यासः वीराणां वाहिनीपतेः।। १६ ।।

यह मराठों की हार नहीं थी एक धोखा मात्र थी। वह तो वीरों के सेनापति की एक व्यूह रचना थी।

हारिताः शिवराजेन, केचिद् दुर्गा वलार्जिताः।
सुभटा रक्षितास्तेन, दत्ता दुर्गाश्च हेलया।। १७ ।।

महाराज शिवाजी ने अपने बल से जीते हुए कुछ किले हार दिये। उस वीर के द्वारा किले दे दिये गये परन्तु अपने सैनिक बचा लिये गये।

शिथिला मौगलाः सर्वे, नासिकागतजीवनाः।
अकर्मण्या विमूढास्ते, बभूवुः शान्तिलासुकाः।। १८ ।।

नाकों दम आये हुए, शिथिल एवं अकर्मण्य बने वे सभी मूर्ख मुगल, सैनिक विश्राम के इच्छुक हो गये।

प्रावृषि सैन्यमादाय, शास्तिखानश्चमूपितः।
सपत्नीकः सपुत्रोऽसौ, पुणे दुर्गं समाश्रयत्।। १९ ।।

वर्षा ऋतु में मुगल सेना-नायक शाइस्ता खाँ अपनी सेना लेकर अपनी पत्नी व पुत्र सहित पूना के किले में ठहर गया।

शिवराजस्य भाग्येन, मौगलो जयदर्पितः।
सदारतनयश्चक्रे स्वावासं भवनं दृढम्।। २० ।।

शिवाजी के सौभाग्य से, जयलाभ से अभिमानी बने उस मुगल ने अपनी पत्नी व पुत्र सहित पूना के किले में ही एक भवन को अपना आवास बनाया।

दुर्गस्य यस्मिन् भवने शिवस्य,
यातः समग्रः शिशुभावकालः।
'तस्मिन्प्रदेशे मुगलस्य तस्य,
स्वल्पः सुकालः व्ययतामगच्छत्।। २१ ।।

उस दुर्ग के जिस भाग में शिवाजी का सारा बचपन बीता था उसी भाग में रहते हुए उस यवन शाइस्ता खाँ का कुछ ही समय सुख से बीत पाया था।

ज्ञात्वा रहस्यं निजचारमुख्यैः,
सर्वैर्वयस्यैः सह दूरदर्शी।
चिन्तापरोऽभूत्प्रतिकर्तुकामो,
यामो वयं तत्र कथं किलेति।। २२ ।।

इस रहस्य को अपने गुप्तचरों से जानकर वह दूरदर्शी शिवाजी उससे बदला लेने की भावना वाला अपने सभी साथियों के साथ चिन्तातुर हो उठा कि हम सब वहाँ तक कैसे पहुँचें ?

तस्मिन् सुदुर्गे भवनानि यानि,
मार्गा गवाक्षाश्च जलाशयाश्च।
वस्तूनि सर्वाणि मनोहराणि,
चिरादभूवँश्छिवचिह्नितानि।। २३ ।।

उस किले में जितने भी भवन, मार्ग, रोशनदान और जलाशय तथा अन्य दूसरी सुन्दर वस्तुएँ थीं वे सभी शिवाजी की जानी पहचानी थीं।

परञ्च धूर्तैर्मुगलैः सुदुर्गः,
आसीत्तदाऽसाववरुद्धमार्गः।
संभाव्य यानं नितरामसाध्यम्,
जाता समग्राः सुविचारमग्नाः।। २४ ।।

परन्तु उस समय धूर्त मुगलों के द्वारा वह किला मुख्य द्वार से अवरुद्ध किया हुआ था। वहाँ जाना नितान्त असाध्य मानकर सभी चिन्तामग्न थे।

केनैव मार्गेण भवेत्स गम्यः,
कथं विशामः सहयोधयकैश्च।
तद्दुर्गमार्गं सहसावरुद्धम्,
कृत्वा वयं तत्र रिपून् हनाम।। २५ ।।

वह किला किस मार्ग से हमारी पहुँच में आ सकता है और हम सब अपने सैनिकों के साथ उसमें कैसे प्रवेश करें। उस किले के मार्ग को सहसा अवरुद्ध करके अपने शत्रु को किस प्रकार मारें।

इत्येव चिन्तापरिखिन्न चित्ता,
दत्वा क्षणं नाऽपि तदैव वीराः।
जिघांसवः शत्रुगणं स्वकीयम्,
प्रपेदिरे ते शिवराज वीरम्।। २६ ।।

इस प्रकार चिन्ता से घिरे हुए चित्त वाले, अपने शत्रुओं को मारने की इच्छा वाले वे वीर एक क्षण भी व्यर्थ न करके उसी समय महाराज शिवाजी के पास पहुँचे।

रिपुदलमपकर्तुं सैनिका देशभक्ताः,
करतलकृतजीवा विक्रमे सिंहकल्पाः।
करधृतकरवालास्तेजसा दीप्तनेत्रा,
गणपतिगणशीलाः सिंहराजं प्रजग्मुः।। २७ ।।

अपने प्राणों को हथेली पर लिये हुए, सिंह के समान पराक्रमी, हाथों में तलवार लिये हुए, तेज से दीप्त नेत्रों वाले, भगवान गणेश के गणों के समान पराक्रमी, देशभक्त वीर सैनिक शत्रुदल का मर्दन करने के लिए, सिंह के समान पराक्रमी शिवाजी के पास पहुँचे।

विमृश्य वीरो निजदेशभक्तान्,
नवां प्रयुक्तिं प्रकटीचकार।
श्रुत्वा प्रयुक्तिं गतसाध्वसास्ते,
श्वस्ताः समग्राः सुभटा अभूवन्।। २८ ।।

उस वीर शिवाजी ने अपने देश भक्तवीरों से विचार-विमर्श करके एक नयी युक्ति निकाली। उस युक्ति को सुनकर वे सभी वीर आश्वस्त और निर्भय हो गये।

शिवेन घटिता चैका वरयात्राप्रयोजना।
यात्रिणः सज्जिता आसन् शस्त्रास्त्रैः प्राणघातकैः।। २९ ।।

शिवाजी ने बारात-यात्रा की एक योजना तैयार की जिसमें बराती लोग प्राणघातक शस्त्रास्त्रों से सज्जित थे।

रणनीति-विशेषज्ञो, दक्षः शत्रुप्रवंचने।
वरयात्रां समादाय, शत्रुं हन्तुं ततोऽचलत्।। ३० ।।

रणनीति के विशेषज्ञ, शत्रु को झाँसा देने में दक्ष शिवाजी बरात लेकर शत्रु का संहार करने चल पड़े।

प्रयातुमुद्यता वीराः-समवेता युयुत्सवः।
भक्तिभावपराः सर्वे रणदेवीमपूपुजन्।। ३१ ।।

युयुत्सा भाव से भरे हुए, भक्ति-भावना वाले, प्रस्थान करने के लिए उद्यत, इकट्ठे हुए सभी वीरों ने रणदेवी की पूजा की।

भवेश्वरी महेश्वरी,
जनेश्वरी सुरेश्वरी,
रणेश्वरी कुलेश्वरी,
जयश्रियं ददातु नः।
प्रचण्ड – मुण्ड-धारिणी,
विशाल – शूल – धारिणी,
विशाल – सिंह – वाहिनी,
जय श्रियं ददातु नः।
विपक्षमान-मर्दिका,
सुरेन्द्रसैन्यनायिका,
स्वभीष्टदानदायिका,
जय श्रियं ददातु नः।
अभीष्ट – कामना – प्रदा,
त्रिदेव – सेविता सदा,
भवेश-भामिनी मुदा,
जय श्रियं ददातु नः।
त्रिशूलखड्गपट्टिशै,
रलंकृता च भूषणैः,
सुषेविता नरैः सुरैः,
जय श्रियं ददातु नः।। ३२ ।।

मंत्रहीनाः क्रियाहीनाः भक्तिपूर्णा रणेश्वरि।
याचामहे भवानि ! त्वां, विजयं पौरुषं बलम्।। ३३ ।।

हे रणदेवी ! हे भवानी ! मंत्रहीन एवं क्रियाहीन परन्तु भक्ति भाव से भरे हुए हम सब तुझसे, विजय, पौरुष एवं बल प्रदान करने की याचना करते हैं।

शिरस्त्राणैस्तनुत्रैश्च प्राच्छादितशरीरकाः।
सुवस्त्रावृतगात्रास्ते बभूवुर्वरयात्रिणः।। ३४ ।।

शिरस्त्राण और कवचों से अपने शरीर को भली प्रकार ढके एवं अच्छे वस्त्रों से अपने अंगों को सजाये हुए वे सभी वीर बराती बन गये।

विविधान्यायुधान्याशु वस्त्रान्तर्निहितानि ते।
समानीय ययुः सर्वे, वरयात्रिच्छटान्विताः।। ३५ ।।

वे सभी वीर शीघ्र ही अपने वस्त्रों में छिपे हुए अनेक प्रकार के हथियार लेकर बराती बने हुए वहाँ से चल दिये।

वादित्रं पटहान् भेरीः वादयन्तः सुवादकाः।
शंखनादं प्रकुर्वाणाः ननृतुरग्रगामिनः।। ३६ ।।

बारात के आगे-आगे चलने वाले, सुन्दर-सुन्दर बाजा बजाने वाले, ढोल, ढपड़े एवं बिगुल बजाते हुए तथा शंखनाद करते हुए नाच-गान करते हुए आगे बढ़ने लगे।

सज्जितं शिविकारूढञ्चोहितमष्टभिर्जनैः।
प्रचेलुर्वरमावृत्य, सादिनःशस्त्रपाणयः।। ३७ ।।

आठ सेवकों के द्वारा उठायी हुई डोली में सजे सँवरे बैठे हुए दूल्हे को घेरकर, हाथों में शस्त्र लिए हुए घुड़सवार चल रहे थे।

अन्ये पदातयश्चासन्छिविकामनुयायिनः।
वरेण प्राचलन्सार्धं, जनाः ज्योतिः प्रकाशकाः।। ३८ ।।

उस डोली के पीछे-पीछे चलने वाले पैदल बराती थे। कुछ व्यक्ति हाथों में मशाल लिये हुए वर (दूल्हे) के साथ-साथ चल रहे थे।

उल्काः कुन्तस्थितास्तैलैर्वर्धयन्तो निरन्तरम्।
राज्यमार्गान्समुत्तीर्य, दुर्गपृष्ठमुपाययुः।। ३९ ।।

भालों की नौंक पर बनी हुई मशालों को निरन्तर तेल से और अधिक तेज करते हुए वे वीर सैनिक (बराती) राजमार्गों को पार करके किले के पृष्ठ भाग में जा पहुँचे।

पत्तनं प्रविशन्तस्ते, सैनिकाश्छद्मवेशिनः।
निश्शंकाश्च निरातंका, मुगलैर्नावलोकिताः।। ४० ।।

निश्शंक एवं निर्भय बने, छद्‌मवेशी वीर सैनिकों को, मुगल सैनिकों ने, नगर में प्रवेश करते हुए देखा ही नहीं (उनके नगर प्रवेश की परवाह ही नहीं की।)

'रमजाने' ति मासे वै, 'रोजा' व्रतोपवासिनः।
अनशना दिने रात्रा, वखादन्निर्भरम्मुदा।।४१ ।।

रमजान के महीने में रोजा रखने वाले वे मुगल दिन में कुछ भी न खाने वाले रात में प्रसन्नतापूर्वक जी भर कर खाते थे।

अजग्ध्वा दिवसे किञ्चिदपीत्वा चापिनीरकम्।
निशायां निर्भरं भुक्त्वा, व्यश्रमन्तो हि मद्यपाः।।४२ ।।

दिन में कुछ भी न खाकर और जल तक भी न पीकर वे शराबी मुगल रात में इच्छानुसार खाकर निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे थे।

आसीत्तद्दिवसस्तत्र, राज्यारोहणपर्वणः।
अतोऽपिमुक्तहस्तेन, पीतम्मद्यं हि सैनिकैः।।४३ ।।

वह दिन औरंगजेब के राज्यारोहण का दिन था। इसलिए भी उस दिन सैनिकों ने खुलकर शराब पी थी।

प्रमत्ताः मुगलाश्चासन्मद्यपानैश्च भोजनैः।
जज्ञिरे न मदान्धास्ते, क्रियते केन कुत्र किम्।।४४ ।।

मद्यपान एवं इच्छित भोजन करने के कारण वे मुगल सैनिक इतने मस्त हो रहे थे कि उन मदान्धों को यह पता नहीं था कि कौन, कहाँ, क्या कर रहा है।

स्वेप्सितं प्राप्तुकामास्ते, मरठ्ठा वीरसैनिकाः।
आत्मानंछादयन्तो वै, गुप्तद्वारमुपागमन्।।४५ ।।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति की कामना लिए वे मराठा वीर अपने आपको छिपाते हुए दुर्ग के गुप्त द्वार तक जा पहुँचे।

अन्योऽन्यमिंगितैर्नूनञ्चालयन्तः परस्परम्।
गुप्तद्वारं समुल्लंघ्य, प्रांगणमधिचक्रिरे।।४६ ।।

वे मराठा वीर सैनिक आपस में एक दूसरे को संकेतों से आगे को चलाते हुए किले के गुप्त द्वार को पार करके किले के आगंन में पहुँचे और उस पर अधिकार कर लिया।

समवेतास्तदा सर्वे, सिंहशावकसदृशाः।
क्षणमेकमदत्वापि, शत्रून्व्यदारयन्रुषा।।४७ ।।

किले के प्रांगण में एकत्र हुए, सिंह शावक के समान उन पराक्रमी मराठा वीरों ने एक

क्षण का भी अवसर न देकर बड़े क्रोध से शत्रुओं का विनाश करना प्रारम्भ कर दिया।

दुर्गस्थः कोऽपिनाशक्नोन्निजप्राणान्सुरक्षितुम्।
यः कोऽपि सम्मुखापातो, गतोऽसौ नामशेषताम्।। ४८ ।।

उस किले में स्थित कोई भी मुगल अपने प्राण न बचा सका। जो कोई भी सामने आया वही यमलोक सिधार गया, उसका नाम मात्र ही शेष रह गया।

अव्यवस्था तथा जाता, पयः सम्प्लावने यथा।
आत्मरक्षारतो व्यग्रो न कश्चित्कोऽपि पश्यति।। ४९ ।।

उस समय किले में ऐसी अव्यवस्था फैल गयी जैसी बाढ़ के आने पर हो जाती है। अपने प्राणों को बचाने में लगा हुआ व्यग्र कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को नहीं देखता था।

छिन्नग्रीवा नरा केचित्केचिच्च भिन्नमस्तकाः।
हस्तपादविहीना वै, केचिद्भूमौहि शिश्यिरे।। ५० ।।

उस किले में ऐसी मार-काट फैली कि कुछ मुगल गर्दन कटे हुए, कुछ मस्तक फूटे हुए एवं कुछ हाथ-पैर कटे हुए भूमि पर पड़े हुए थे।

भूलुठितान्समुल्लंघ्य, क्षिप्रं शत्रुजिघांसवः।
शाइस्ताधिष्ठितं गेहं, प्राधिचक्रुः समन्ततः।। ५१ ।।

शत्रु का शीघ्र ही विनाश करने की कामना वाले उन वीर मराठा सैनिकों ने भूमि पर पड़े हुए सैनिकों को अपने पैरों तले रौंदते हुए, जरा देर में उस स्थान को चारों ओर से घेर कर अपने अधिकार में कर लिया जिसमें शाइस्ता खाँ ठहरा हुआ था।

तनयं त्यक्त्वा तत्रैव, तत्परश्चात्मरक्षणे।
पदँल्लेभे न कुत्रापि, प्राणत्राणाय मौगलः।। ५२ ।।

अपने पुत्र की परवाह न करके अपनी रक्षा में तत्पर उस मुगल वंशीय शाइस्ता ने अपने प्राण बचाने के लिए कहीं भी कोई स्थान नहीं पाया।

वातायनं समालक्ष्य, प्राणरक्षण[illegible]धनम्।
कूर्दितुमुद्यतो भूतो, धृत्वा गवाक्ष[illegible]काष्ठकम्।। ५३ ।।

अपने प्राणों की रक्षा करने का एक मात्र साधन [illegible] किले के भवन में बने वातायन को ही जान कर उसकी चौखट के निचले भाग को पकड़ [illegible]कर उससे कूदकर बाहर जाने के लिए वह (शाइस्ता खाँ) उद्यत हो गया।

तरसा शिवराजेन, ल[illegible] [illegible]क्षितन्तस्य चेष्टितम्।
निमिषोपेक्षणेनैव, [illegible] [illegible]यास्यति हस्ततः।। ५४ ।।

महाराज शिवाजी ने शीघ्र ही उसके मनोभाव को जान लिया और समझ गये कि एक निमिष की लापरवाही से ही दुष्ट शत्रु हाथ से निकल जायेगा।

'या खुदा' शिवराजोऽयं, शैतानोवा तदात्मजः।
'फरिश्ता' यत्र नागच्छेच्छिवोऽत्र कथमागतः।। ५५ ।।

शिवाजी को देखकर व्याकुल एवं व्यग्रमना शाइस्ता खाँ कहने लगा कि हे खुदा ! यह शिवाजी शैतान है या शैतान की औलाद है। जहाँ पर फरिश्ता भी नहीं पहुँच सकता वहाँ यह शिवाजी कैसे पहुँच गया? ।

शिरश्छेत्तुं शिवश्शत्रोः शिरसि प्राहरद्वली।
रक्षितन्तु शिरस्तेन, करस्तेन न रक्षितः।। ५६ ।।

उस बलवान शिवाजी ने शत्रु का सिर काटने के लिए अपनी तलवार का उसके सिर पर भारी प्रहार किया परन्तु उस शाइस्ता ने अपने सर को तो बचा लिया लेकिन अपने हाथ को न बचा सका।

करांगुलीः सहांगुष्ठाः पूर्णतः रक्तरञ्जिताः।
असिच्छिन्नाः परित्यज्य, का पुरुषोऽसौ पलायितः।। ५७ ।।

शिवाजी की तलवार के प्रहार से कटी हुई, पूर्ण रूप से रक्त से लथपथ अंगूठे सहित उंगलियों को वहीं छोड़कर वह कायर शाइस्ता खाँ वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

नीत्वा प्राणान्महाभीरू रणन्त्यक्त्वा पलायितः।
दुष्टेन स्वार्थिना तेन, चिन्तिता न निजाश्रिताः।। ५८ ।।

अपने प्राणों को लेकर वह कायर शाइस्ता खाँ युद्ध छोड़कर भाग खड़ा हुआ। उस स्वार्थी दुष्ट ने अपने आश्रितों की भी कोई चिन्ता नहीं की।

शाइस्ता-तनयस्सद्यस्तत्याज निज जीवितम्।
अन्येचापि ततो जग्मुः परेतराडनिकेतनम्।। ५९ ।।

शाइस्ता का पुत्र भी शीघ्र ही अपने प्राणों से हाथ धो बैठा और दूसरे अन्य मुगल सैनिक भी यमलोक को चलते बने।

बहूनि वस्तुजातानि, शस्त्रास्त्रञ्च हयादयः।
परित्यक्ताः प्रधावद्भिः शत्रुभी रणभूमिषु।। ६० ।।

अपने प्राण लेकर भागते हुए शत्रुओं के द्वारा युद्ध-भूमि में अनेक वस्तुएँ, शस्त्रास्त्र एवं घोड़े आदि पीछे ही छोड़ दिए गये।

लब्ध्वा जयं वै मतिकौशलेन,
देवीं भवानीम्मनसाभिवन्द्य।
आलभ्य दुर्गम्निज मातृदेवीं,
सार्धं स्वमित्रैः शिरसा ननाम।। ६१ ।।।

अपने बुद्धि कौशल से जय प्राप्त करके देवी भवानी को मन से प्रणाम करके, शीघ्र ही अपने किले में आकर छत्रपति शिवाजी ने अपने मित्रों के साथ अपनी माता को सर झुका कर प्रणाम किया।

शिरसि पुत्रमाघ्राय, जननी पुत्रवत्सला।
उवाच वीर पुत्र ! त्वं, लभस्व संयुगे जयम्।। ६२ ।।

पुत्र को प्रेम करने वाली माता जीजाबाई ने पुत्र का सर सूंघकर कहा, हे वीर पुत्र ! तू युद्ध में सदा जय प्राप्त करे।

राजा जयसिंहः

व्यग्रश्च खिन्नः स्वपराभवात्तु,
धिग् धिग् हि कुर्वन्निज पौरुषञ्च।
दिल्लीपुरम्प्राप्य स शास्तिखानो,
दिल्लीश्वरं वै शरणम्प्रपदे।। १।।

अपनी हार से व्यग्र एवं उदास वह शाइस्ता खाँ अपने पौरुष को धिक्कारता हुआ दिल्ली आकर दिल्लीश्वर (औरंगजेब) की शरण में पहुँचा।

भ्रातृहन्ता पितृद्रोही, हिन्दुधर्मविनाशकः।
प्रोवाच स्वार्थ-धर्मान्धः शाइस्ताख्यं स्वनायकम्।। २ ।।

अपने पिता से द्रोह करने वाला, अपने भाइयों की हत्या करने वाला, हिन्दू धर्म का विनाशक, स्वार्थ एवं धर्म के प्रति कट्टर व अन्धविश्वासी वह (औरंगजेब) शाइस्ताखाँ नामक अपने सेनापति से बोला।

भूत्वा परास्तः कथमागतस्त्वम् ?
यातः कथन्नैव परेत वेश्म ?
त्वत्कारणाद्वै मम मानहानिः,
पूर्णा कदा नैव भविष्यतीयम्।। ३ ।।

औरंगजेब ने कहा कि तू शिवाजी से परास्त होकर यहाँ क्यों आया है ? तू मर क्यों नहीं गया ? तेरे कारण मेरी जो मानहानि हुई है, यह कभी पूरी नहीं होगी।

सर्वथा त्वमयोग्योऽसि, पराजेतुं हि वैरिणम्।
'वंग' प्रान्तं प्रयाहि त्वमीक्षस्व शासनन्ततम्।। ४ ।।

तू शत्रु को परास्त करने योग्य है ही नहीं। तू बंगाल प्रान्त चला जा और वहाँ का शासन संभाल ले।

कुचक्री कूटनीतिज्ञो, धूर्तो दुष्टो दुराशयः।
शिववीरं वशीकर्तुं, चकार स्वमतिं दृढाम्।। ५ ।।

सदा कुचक्र चलाने वाले, कूटनीति के दाँव-पेच के जानने वाले, धूर्त, दुष्ट एवं दुर्भावना वाले औरंगजेब ने वीर शिवाजी को अपने वश में करने के लिए दृढ निश्चय किया।

शिवराजो ममाधीनः, कथम्भवितुमर्हति।
इति चिन्ता निमग्नोऽसौ, न लेभे वाञ्छितं सुखम्।। ६ ।।

शिवाजी मेरे अधीन किस प्रकार हो, इसी चिन्ता में डूबा हुआ औरंगजेब अपने वाञ्छित सुखों का भी उपभोग नहीं कर पा रहा था।

शिवराजोन्नतिं श्रुत्वा, श्रुत्वा तस्य प्रशंसनम्।
आत्मग्लानिभरो भूपो, मनसेत्थं व्यचारयत्।। ७ ।।

महाराज शिवाजी की उन्नति एवं उनकी प्रशंसा सुनकर आत्मग्लानि से भरे हुए राजा औरंगजेब ने अपने मन में यह विचार किया।

विदुषा साधनीयं वै, कण्टकेनैव कण्टकम्।
इति नीतिं विचार्यासौ, प्रोक्तवान्मित्रकं स्वकम्।। ८ ।।

'विद्वान को काँटे से काँटा निकालना चाहिए', इस नीति को विचार कर औरंगजेब ने अपने मित्र (राजा जयसिंह) से कहा।

अन्तर्निगूह्य विद्वेषम्मित्रभावं प्रदर्शयन्।
राजानं क्षत्रियं वीरं, जयसिंहमुवाच सः।। ९ ।।

अपने हृदय में द्वेषभाव को छिपाये हुए और मित्र भाव दिखाते हुए औरंगजेब ने क्षत्रिय वीर राजा जयसिंह से कहा—

वीरोऽसिजयसिंह ! त्वं क्षत्रियाणां शिरोमणिः।
त्वमेव सर्वथा शक्तः, पराजेतुं शिवं रिपुम्।। १० ।।

हे राजा जयसिंह ! तू वीर है और क्षत्रियों में सम्मान के सर्वोच्च पद को प्राप्त करने वाला है। तू ही एक ऐसा क्षत्रिय वीर है जो मेरे शत्रु शिवाजी को पराजित करने में सभी तरह से समर्थ है। तुझ पर मेरा विश्वास है।

अतः सैन्यं समादाय, यथेच्छम्पुष्कलंधनम्।
प्रयाहि सत्वरं राजन् ! जय नूनं हि वैरिणम्।। ११ ।।

इसलिये हे मित्र ! राजा जयसिंह ! तुम जितनी चाहो उतनी सेना और धन का विशाल भण्डार लेकर शीघ्र ही जाओ और उस शत्रु पर विजय प्राप्त करो।

सैन्यं धनं समादाय, योद्धाऽसौ वाहिनीपतिः।
शिवसिंहं वशीकर्तुं, प्रातिष्ठत्तेजसां धनी।। १२ ।।

वह महातेजस्वी, योद्धा, सेनापति राजा जयसिंह विशाल सेना एवं विपुल धन लेकर शिवाजी रूपी सिंह को वश में करने के उद्देश्य से दिल्ली से चल दिया।

सादिनो गजिनश्चैव, सैनिकाः पदचारिणः।
हययुता विशालाश्च, शकट्यः प्राचलँस्ततः।। १३ ।।

घुड़सवार हाथियों पर सवार हुए तथा पैदल सैनिक और घोड़ों से जुती हुई बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ भी साथ में चल दीं।

शतघ्न्यश्चाप्यसंख्याता, वह्निचूर्णप्रपूरिताः।
महादुर्गविघातिन्यः सार्धञ्चासन्नृपेण तु।। १४ ।।

बारूद से भरी हुई, विशाल किलों को भी ध्वस्त करने वाली, अनेक तोप भी उस राजा के साथ थीं।

अभिजात्योऽपिसिंहोऽसौ, विहाय क्षात्रगौरवम्।
जिघांसुर्देशजं वीरं, भृत्यभावभरोऽभवत्।। १५ ।।

उच्च कुल में पैदा हुए, सिंह के समान पराक्रमी, अपने ही देश में जन्म लेने वाले वीर की हत्या करने की इच्छा वाले राजा जयसिंह, अपने क्षत्रिय जाति के गौरव को भुलाकर एक आज्ञाकारी सेवक के समान हो गये।

परहस्तगतश्श्येनो जानन्नपि स्व श्रमं वृथा।
निरीहान्पक्षिणो हन्तुं, प्रयेते कर्मणा वली।। १६ ।।

पराधीन, बली बाज ने, अपने परिश्रम को व्यर्थ जानते हुए भी निरीह पक्षियों को मारने के लिए पूरा प्रयत्न किया।

शाद्वलानि सुवृक्षाणि, ग्रामाँश्च नगराणि वै।
मौद्गलं पुष्कलं सैन्यं, ननाश मूलतः कृषिम्।। १७ ।।

हरे भरे घास के मैदान, अच्छे सुन्दर वृक्ष, गाँव और नगरों को तथा हरी भरी खेती को मुगल सेना ने जड़मूल से नष्ट कर दिया।

विध्वंसितन्निजङ्क्षेत्रं, संदृश्य मुगलात्मजैः।
क्लिश्यमानेन खिन्नेन, शिवराजेन चिन्तितम्।। १८ ।।

मुगल सैनिकों से अपने क्षेत्र को नष्ट-भ्रष्ट होता हुआ देखकर, दुःखी और खिन्न हुए शिवाजी ने सोचा।

धृतोऽस्मि साम्प्रतन्नूनं प्रबलैः प्रतिपक्षिभिः।
कालोचितम्मयाकार्यं, यत्कार्यमुचितं हि तत्।। १९ ।।

इस समय मैं निश्चित ही प्रबल शत्रुओं से घिर गया हूँ अब समय को देखते हुए मुझे वही कार्य करना है जो समय के अनुरूप हो।

विदेशीयैर्डचैरांग्लै, धूर्तैः स्वार्थपरायणैः।
मौगलैर्यावनैश्चास्मि, सर्वथा विवशीकृतः।। २० ।।

धूर्त और स्वार्थ परायण विदेशी डचों, अंग्रेजों, मुगलों और यवनों के द्वारा मुझे विवश कर दिया गया है।

वह्नेः रक्षेद्गृहन्तत्कः प्रभुर्यस्य प्रदाहकः।
स्वनिभृतोजनो नित्यं, स्वजनेनैव वञ्च्यते।। २१ ।।

उस घर को अग्नि से कौन बचाये जिस घर को उस घर का स्वामी ही स्वयं जला देना चाहता हो। अपनों पर निर्भर रहने वाला व्यक्तिं अपनों से ही ठगा जाता है।

युयुधेऽसौ यथाशक्ति, न प्राप विजयश्रियम्।
क्लिश्यमानः शिवश्चान्ते, मनसीदमतर्कयत्।। २२ ।।

शिवाजी ने शक्तिभर युद्ध किया परन्तु उन्हें विजय नहीं मिली। अन्त में दुःखी होते शिववीर ने अपने मन में सोचा—

सम्प्राप्ते सर्वनाशे वै, गृह्णात्यंशं हि पण्डितः।
श्रेयस्करमिदानीन्तु, स्वनम्रत्वप्रदर्शनम्।। २३ ।।

सर्वनाश उपस्थित होने पर विद्वान कुछ अंश प्राप्त करके ही सन्तुष्ट हो जाता है। इस समय मेरे लिए यही कल्याणकारी है कि मैं अपनीं विनम्रता का प्रदर्शन करुँ।

सुपेलवेन पत्रेण विच्छेतुं शक्यते मणिः।
परञ्च नैव दुर्बुद्धेर्मनः केनादि शक्यते।। २४ ।।

एक सुकोमल पत्र से मणि में छेद किया जा सकता है परन्तु दुर्बुद्धि व्यक्ति के मन को तो किसी भी चीज से नहीं बदला जा सकता।

यद्यपि मात्र सन्धिस्तु, वाधते मां त्रिशूलवत्।
सम्प्रति साम्प्रतन्नास्ति, प्रतिरोधो विपक्षिणाम्।। २५ ।।

यद्यपि 'सन्धि' करने का नाम मात्र लेना भी मुझे त्रिशूल के समान पीड़ादायक है परन्तु इस समय शत्रुओं का प्रतिरोध करना उचित नहीं है।

रायगढस्थिताचासीद्राजधानी शिवस्य वै।
धन-धान्यैः समाढ्यासा, वासीद्राष्ट्रसुजीवना।। २६ ।।

महाराज शिवाजी की राजधानी उस समय 'रायगढ़' में स्थित थी जो राष्ट्र को जीवन प्रदान करने वाली और धन-धान्यों से भरी-पूरी थी।

राजधानी विपद्ग्रस्ता, वर्तते साम्प्रतम्मम।
सर्वथा रक्षणीयेयं, रक्षिका नो भविष्यति।। २७ ।।

इस समय मेरी राजधानी व देश विपत्ति में हैं, इसकी रक्षा करनी है क्योंकि यही हमारी रक्षिका बनेगी।

प्रत्युत्पन्नमती राजा, विमृश्य स्व शुभाशुभम्।
जननीम्मन्त्रयामास, किङ्कर्त्तव्यम्मयाधुना।। २८ ।।

प्रत्युत्पन्नमति महाराज शिवाजी ने अपना अच्छा-बुरा विचार कर अपनी माता से सलाह की और पूछा कि हे माता मुझे अब क्या करना चाहिए।

झंझावातं समालोक्य, धैर्यन्नैव परित्यजेत्।
उद्यमी साहसी धीरः पारं याति विपन्निधिम्।। २९ ।।

हे बेटा ! झंझावात को सामने आया देखकर धीरज कभी नहीं छोड़ना चाहिए। उद्यमी, साहसी, धीर व्यक्ति ही विपत्तियों के सागर को पार करता है (कायर नहीं)।

वायुसम्प्रेरिता मेघाश्छादयन्ति प्रभाकरम्।
मेघापाये पुनः सूर्यो द्योतते दिवि तेजसा।। ३० ।।

वायु से प्रेरित हुए बादल कुछ देर के लिए तेजस्वी सूर्य को ढक लेते हैं परन्तु बादलों के छट जाने पर वही सूर्य आकाश में अपने तेज से वैसे ही चमकने लगता है।

पुरन्दरं समागत्य, महाराष्ट्रमहीश्वरः।
अदृष्ट्वैवापमानं स्व, मवादीत्क्षत्रियं नृपम्।। ३१ ।।

महाराष्ट्र भूमि का अधीश्वर शिवाजी ने 'पुरन्दर' नामक स्थान पर पहुँचकर, अपने अपमान की परवाह न करके, क्षत्रिय राजा, मिर्जा जयसिंह से कहा—

अभिवन्दे महावीरं, प्रतिज्ञापरिपालकम्।
मर्यादारक्षकं शूरं, पितृ-तुल्यञ्जनेश्वरम्।। ३२ ।।

प्रतिज्ञा का पालन करने वाले, मर्यादा की रक्षा करने वाले महाशूरवीर, पिता के समान आदरणीय राजा (जयसिंह) को मैं (शिवाजी) अभिवादन करता हूँ।

ससम्मानं समुत्थाय, समालोक्य रसाधिपम्।
स्थानं समर्पयत्तस्मै, राजा निजोपविष्टरम्।। ३३ ।।

राजा जयसिंह ने महाराष्ट्र के राजा शिवाजी को आया देखकर बड़े सम्मान के साथ उठकर अपने आसन के पास ही शिवाजी को बैठने का स्थान दिया।

कस्माद्धेतोर्महाराज ! माञ्च मामकीम्महीम्।
परहस्तगतां कृत्वां, को लाभस्ते भवेत्प्रभो।। ३४ ।।

हे महाराज ! आप मुझे और मेरे देश की भूमि को किस कारण दूसरे के हाथ में सौंप रहे हैं ? इससे आपका क्या लाभ होगा ?

संयुगात्तु विरक्तोऽस्मि सन्धातुं त्वामुपागतः।
न त्वहं वञ्चनीयोऽस्मि, त्वया च प्रभुणा च ते।। ३५ ।।

हे राजन ! मैं युद्ध से उकंता गया हूँ और सन्धि करने के लिए आपके पास आया हूँ ! मुझे आपके द्वारा अथवा आपके स्वामी (औरंगजेब) के द्वारा धोखा न दिया जाय।

आत्मानं सफलम्मत्वा, क्षत्रियोऽसौ चमूपतिः।
प्रोवाच शिवराजं वै, मोदमानो महावली।। ३६ ।।

अपने लक्ष्य में अपने को सफल मानता हुआ वह बलवान क्षत्रिय सेनापति, प्रसन्न होता हुआ शिवाजी से कहने लगा।

अधिकृतेषु दुर्गेषु, केचिद्दुर्गाः खलु त्वया।
सन्धिफलस्वरूपेण, चार्पणीयाः सुनिश्चितम्।। ३७ ।।

सन्धि के फलस्वरूप, तेरे द्वारा अधिकार में किए गये दुर्गों में से कुछ दुर्ग निश्चित रूप से वापस करने होंगे।

शंकितः शिवराजोऽसौ, क्षत्रिये व्यश्वसीत्तदा।
निजप्राणसुरक्षार्थं, विवशा किं न कुर्वते।। ३८ ।।

शंकित होते हुए भी उस शिवराज ने उस क्षत्रिय राजा जयसिंह का विश्वास कर लिया। अपने प्राण बचाने के लिये विवशजन क्या नहीं करते।

समयप्रतिवद्धेन, शिवेन शिवकामिना।
दुर्गाः समर्पितास्तेन, त्रयोविंशति संख्यकाः।। ३९ ।।

अपने प्रदेश व जनता का भला चाहने वाले शिवाजी महाराज् ने शर्त के अनुसार तेइस क़िले राजा जयसिंह को सौंप दिए।

रक्षिताः स्वाधिकारे वै, दुर्गा एकश्च विंशतिः ।
कूटनीतिनयज्ञेन, प्रदेशश्चापि रक्षितः ।। ४० ।।

शिवाजी ने २१ किले अपने अधिकार में रखे। इस प्रकार कूटनीति के विशेषज्ञ शिवा ने अपने प्रदेश को भी आपत्तियों से बचा लिया।

विज्ञोविरुद्धं समयं विलोक्य,
वलांनुसारं कुरुते प्रयत्नम्।
वाक्यैः स्वकार्यैर्निजभावनाभिः,
कालंस्वकीयं स्वहिते विधातुम्।। ४१ ।।

समझदार मनुष्य अपने प्रतिकूल समय को सुधारने का भरसक प्रयत्न करता है और पूरी शक्ति लगाकर वचनों से, कार्यों से एवं भावनाओं से समय को अपने अनुकूल करता है।

९

मातृ-दर्शनम्

दैवात्कदाचित्तु परावरज्ञो,
जानाति नासन्नविपद्विपाकम्।
वक्तुं समर्थो न हि कोऽपि विज्ञः,
किङ्कस्य भाले लिखितं विधात्रा।। १ ।।

आगा-पीछा समझकर कार्य करने वाला विद्वान व्यक्ति भी कभी भाग्यवश निकट में ही आने वाली विपत्ति के परिणाम को नहीं समझ पाता। कोई भी विद्वान व्यक्ति यह कहने में समर्थ नहीं है कि विधांता ने किसके भाग्य में क्या लिखा है ?

वृद्धे नृपेन्द्रे सरलस्वभावो,
विश्वस्य भूपो रणनीतिदक्षः।
आश्रुत्य गन्तुं नगरं रिपूणाम्,
राजा शिवोऽसौ न सुखं प्रपेदे।। २ ।।

रणनीति में दक्ष, सरल स्वभाव वाले, राजा (शिवा) ने उस बूढ़े राजा (जयसिंह) का विश्वास करके, और शत्रुओं के नगर को जाने की प्रतिज्ञा करके, सुख अनुभव नहीं किया।

उत्सेकहीनो गतमत्सरोऽसा, वाच्छाद्य देहन्निजवस्त्रकेन।
चिन्तानिमग्नो धृतकण्ठहारः, हितैषिणीं स्वाञ्जननीञ्जगाम।। ३ ।।

निरभिमानी, मत्सरता से रहित, चिन्ता में डूबा हुआ, गले में माला पहिने हुए शिवाजी अपने शरीर को अपने दुपट्टे से ढके हुए, हित करने वाली अपनी माता के पास पहुँचा।

आसीद्धि कालः सनिशामुखस्य,
शिवो यदा स्वाञ्जननीन्ददर्श।
संहर्तुकामोनिजरश्मिजालान्,
तदा दिनेशो गगने बभूव।। ४ ।।

जिस समय शिवाजी अपनी माता के पास पहुँचा तो वह सन्ध्या का समय था। उस समय आकाश में सूर्य अपना किरण-जाल समेटने के लिए तत्पर था।

दिनपतिरपि धीरं शौर्यसम्पन्नवीरम्,
दिवसगमनखिन्नः क्लिश्यमानं विलोक्य।
उदधिसलिललीनं स्वात्मविम्बं विधातुम्,
प्रखरकिरणजालं संहरँल्लोहितोऽभूत्।। ५ ।।

सारे दिन यात्रा करने के कारण खिन्न हुए सूर्यदेव भी शूर-वीर एवं धैर्यशील शिवाजी को परेशान देखकर अपने बिम्ब को समुद्रजल में लीन करने के लिए, अपनी प्रखर किरणों के समूह को समेटते हुए लोहित वर्ण के हो गये।

रविकिरणसमूहः पादपेष्वेव नासीद्,
ऋषि-मुनि-नर पूर्णा देव-भूमिर्बभूव।
अपरजलधिनीरे मज्जितोऽभूद्दिनेशो,
विधुरपि निजरम्यां सर्वसौम्यां दधार।। ६ ।।

सूर्य की किरणों का जाल उस समय वृक्षों पर भी नहीं रहा था। देव भूमि ऋषि-मुनि और मनुष्यों से पूर्ण हो गयी थी। सूर्य पश्चिमी सागर के जल में डूब गया था और चन्द्रमा ने सबको अच्छी लगने वाली अपनी सुन्दर शोभा को धारण कर लिया था।

दुःखाग्निदग्धः सुखविस्मृतोऽसौ,
वात्सल्य-सौख्यं परिलब्धुकामः।
वात्सल्यमूर्तिञ्जननीं स्वकीयाम्,
निशामुखे वीरवरः प्रपेदे।। ७ ।।

दुःख की आग में जलता हुआ, सभी सुखों को भूला हुआ वात्सल्य सुख को प्राप्त करने की लालसा वाला, वीरवर शिवाजी सायंकाल वत्सलता की मूर्ति अपनी माता (जीजाबाई) के पास पहुँचा।

दूरात्स्वकीयाञ्जननीं विलोक्य,
पूजा-गृहे देवसमाधिनिष्ठाम्।
निबद्धहस्तां नतमस्तकांताम्,
प्रतीक्षमाणस्तनयोऽतिष्ठत् ।। ८ ।।

पूजागृह में देव की समाधि में बैठी हुई, हाथ बाँधे हुई, मस्तक झुकाए हुई अपनी माता को दूर से ही देखकर पुत्र (शिवाजी) प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा रहा।

प्रज्वाल्य दीपं धरिणीश्वरस्य,
माता भवानीं मनसा स्मरन्ती।
चाञ्चल्यभावं भजतीं शिखां सा,
दीपस्य दृष्ट्वा व्यथिता बभूव।। ९ ।।

महाराज शिवाजी की माता दीप जलाकर देवी भवानी को मन से स्मरण करती हुई, दीप की लौ को चंचल होती हुई देखकर व्याकुल हो उठी।

नास्त्यत्र झंझा प्रखरो न वायु,
ज्योंतिः प्रदीपस्य कथं स्थिरन्न।
जाने न किं सूचयति प्रदीपो,
भूयादनिष्टं तनयस्य मे न।। १० ।।

इस समय यहाँ न तो आँधी है और न ही तेज गति वाली वायु है। मैं समझ नहीं पा रही कि यह दीपक क्या सूचित करना चाहता है। हे प्रभो ! मेरे पुत्र का कोई अनिष्ट न हो।

पुत्रो मदीयो न हि मे कदापि,
माता त्वमेवाऽसि तु सत्यमित्थम्।
पुत्रः कुपुत्रो भवितुन्तु शक्यो,
माता कुमाता न कदापि दृष्टा।। ११ ।।

हे देवी ! मेरा पुत्र (शिवाजी) मेरा पुत्र नहीं है। सत्य बात तो यह है कि उसकी माता तू ही है। पुत्र तो कुपुत्र हो सकता है परन्तु माता को कुमाता कहीं नहीं देखा गया।

उन्मील्य नेत्रे जननी शिवस्य,
संस्पृश्य पादौ निजदेवतायाः।
प्रणम्य देवीन्तुलजां भवानीम्,
माता 'जिजाऊ' वहिराजगाम।। १२ ।।

महाराज शिवाजी की जननी माता जीजाबाई, अपने नेत्र उघाड़कर, अपने देवता के चरण छूकर और देवी तुलजा भवानी को प्रणाम करके बाहर आईं।

माता सुपुत्रं समुपस्थितन्तं,
विलोक्य धीराऽपि न मोदमाप।
अनिष्टशंका जननीञ्चकार,
चिन्ताग्निदग्धां सुतवत्सलान्ताम्।। १३ ।।

उस धीर माता ने अपने पुत्र को सामने आया देखकर भी प्रसन्नता अनुभव नहीं की। पुत्र के अनिष्ट की आशंका ने उस पुत्रवत्सला माता को चिन्ता की अग्नि से जलती हुई बना दिया।

शीघ्रं समागत्य शिवोजनन्याः,
पादौ पवित्रौ शिरसा ननाम।
आघ्राय माता तनयस्य भाल,
माशीर्वचोभिस्तनयं सिषेच।। १४ ।।

महाराज शिवाजी ने जल्दी से बढ़कर माता के पवित्र चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया। माता ने भी पुत्र के मस्तक को सूँघकर आशीर्वाद के वचनों से अपने पुत्र को नहला दिया।

मातर्ममाग्रे जटिला समस्या,
भूपः सुवृद्धो मुगलेश-भृत्यः
पुनः पुनः प्रेरयतीह मां स,
आग्राप्रयाणं तरसा हि 'कुर्याम्।। १५ ।।

हे माता ! मेरे सामने एक जटिल समस्या आ गयी है। मुगल शासक औरंगजेब का सेवक, बूढ़ा क्षत्रिय राजा जयसिंह मुझे बार-बार प्रेरित कर रहा है कि मैं आगरा जाऊँ।

वाक्यम्मदीयंशृणु मे सुपुत्र !
धन्योऽसि यत्त्वं यतसे शुभाय।
यद्वंशभद्राय भवेत्सुकृत्यङ्
कृत्यं हि तत्त्वच्चरितुं समर्थः ।।१६।।

हे मेरे सुयोग्य पुत्र ! मेरी बात सुन ! तू धन्य है कि तू कल्याण के लिए यत्न कर रहा है। जो सत्कर्म अपने खानदान के लिए हितकर हो तू उसी कर्म को कर।

विभाव्य चाग्रा-गमनं शुभाय,
तत्र प्रयातुं कृत निश्चयोऽहम्।
आज्ञां भवत्याः परिलब्धुकामः,
क्षिप्रं यियासुः समुपस्थितोऽस्मि।। १७ ।।

हे माता ! आगरा जाना हितकर यह समझकर मैंने वहाँ जाना निश्चित कर लिया है। जल्दी ही वहाँ पहुँचने का इच्छुक मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करने का अभिलाषी आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ।

विश्वासघाती-निजवंशघाती,
विश्वासयोग्यो न कदापि लोके।
राज्यस्य हेतोः पितरं सुपूज्यं,
सन्तुद्य योऽसौ शिथिलीचकार।। १८ ।।

वह औरंगजेब, अपने ही वंश के साथ घात करने वाला, इस जमाने में कभी भी विश्वास करने योग्य नहीं है। जिसने राज्य के लिए अपने पूज्य पिता को भी कष्ट देकर हर तरह से शिथिल बना दिया है।

सीदन्ति लोके तु विचारमूढाः,
परावरज्ञा विजयं लभन्ते।
विमृश्य कार्यं फलदं सदैव,
कुर्यान्नरो नित्यमवश्यमेव।। १९ ।।

इस संसार में वे व्यक्ति सदा कष्ट उठाते हैं जो अच्छे-बुरे को नहीं समझते। अच्छे-बुरे का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति तो सदैव विजय प्राप्त करते हैं। मनुष्य को भली प्रकार सोच-समझकर नित्य ही और अवश्य ही फलदायक कार्य ही करने चाहिएँ।

प्रयाहि सर्वं सुविचार्य पुत्र !
भूयाच्छिवन्ते लभतां यशोवै।
यात्रान्त्वदीयान्तुलजा भवानी,
संरक्षिका नः सुखदां विदध्यात्।। २० ।।

हे बेटा ! सब कुछ भली प्रकार सोच-समझकर वहाँ जाओ, तेरा कल्याण हो और तू यश प्राप्त करे। हमारी संरक्षिका तुलजा भवानी तेरी यात्रा को सुखद बनायें।

शुत्रंदमोऽसौ सुमनाः प्रतापी,
गोप्ता समर्थो रिपुवंशहन्ता।
संस्मृत्य देवीं तुलजां भवानीं
नौति स्म देवीञ्जननीं स्वकीयाम्।। २१ ।।

शत्रुओं का दमन करने वाले, स्वस्थ मन वाले, प्रतापी, रक्षा करने वाले, सभी प्रकार से समर्थ, शत्रु वंश का हनन करने वाले शिवाजी ने देवी तुलजा भवानी का स्मरण करके अपनी पूज्य माता को प्रणाम किया।

आशीर्वचोभिरभिषिच्य पुत्रं,
प्रस्थापयामास च वत्सला सा।
विशालभाले तिलकन्नियोज्य,
सस्मार माता स्वकुलेष्टदेवान्।। २२ ।।

उस पुत्रवत्सला मा (जीजाबाई) ने अपने पुत्र को आशीर्वचनों से अभिषिक्त करके और उसके माथे पर तिलक लगाकर वहाँ से विदा किया (भेज दिया) तथा अपने कुल देवताओं का स्मरण किया।

भक्तो भवान्या भयदां भवानीं
भीमाङ्करालाञ्छुरिकां दधानः।

दुर्भेद्यदुर्गाद् दिवसान्तकाले,
कक्षं स्वकीयङ्गमनोत्सुकोऽभूत्।। २३ ।।

देवी भवानी का भक्त (शिवाजी) भय प्रदान करने वाली देखने में भयंकर लगने वाली, भवानी नाम की कराल तलवार को धारण किए हुए, सन्ध्या समय उस दुर्भेद्य दुर्ग से अपने कक्ष को जाने के लिए तैयार हुआ।

चिन्तापरीतः कृतखड्गकोशः,
शार्दूलगामी सुखशान्तिहीनः।
आवासभूमिं प्रचलन्नरेन्द्रः
प्राप प्रतापी प्रबलप्रभावः।। २४ ।।

चिन्ता से घिरा हुआ, तलवार को म्यान में किए हुए, सिंह के समान मस्त चाल वाला, सुख-शान्ति विहीन (बैचेन) प्रबल प्रभाव वाला, प्रतापी राजा (शिवाजी) धीरे-धीरे चलता हुआ अपने आवास स्थल पर पहुँचा।

वैश्वानरो भस्मचयावृत्तोऽपि,
शीलं स्वकीयन्न जहाति चोग्रम्।
दुष्टग्रहैः पीडितचन्द्रदेवो
विहाय शैत्यं भजते न तापम्।। २५ ।।

भस्म से ढकी हुई अग्नि कभी भी अपने उग्र स्वभाव को नहीं छोड़ती। पाप ग्रहों से पीड़ित होते हुए भी चन्द्र अपनी शीतलता छोड़कर उष्णता धारण नहीं करता।

वीरान्विशिष्टान्निजदेशभक्ता
नादाय भृत्याँस्तुरगाधिरूढान्।
शम्भाभिधेयं तनुजं स्वकीयम्,
प्रस्थातुकामो नगराच्चचाल।। २६ ।।

घोड़े पर सवार कुछ विशिष्ट देशभक्त वीरों को, सेवकों को एवं अपने प्रिय पुत्र शम्मा जी को लेकर वहाँ से प्रस्थान करने के उत्सुक शिवाजी नगर से चल दिये।

आग्रा-प्रवासः

आवर्ततोयाः सरितो गभीराः
उल्लंघ्य चागम्य गिरीन्सुतुंगान्।
दुर्धर्षहिंस्त्रैस्तु निषेवितानि,
चाग्रामवाप्नोत्सबलो बनानि।। १ ।।

भंवरों से युक्त गहरे जल वाली नदियों को अगम्य ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को एवं खूँखार हिंसक जीवों से भरे हुए वनों को पार करके महाराज शिवाजी अपनी सेना सहित आगरा आ पहुँचे।

पुत्राय पत्रं लिखितं नृपेण
चालभ्य गुप्तं पुटके निधाय।
सभृत्यपुत्रः सुविशालवक्षः,
स्वातन्त्र्यभक्तो नगरीमवाप।। २ ।।

राजा जयसिंह के द्वारा अपने पुत्र (रामसिंह) के लिए लिखे गये गुप्त पत्र को अपने साथ लेकर स्वतंत्रता का भक्त, विशाल छाती वाला शिवाजी अपने सेवकों व पुत्र (शम्भाजी) सहित आगरा नगरी पहुँचा।

भूपोचितं सत्करणं न लब्ध्वा,
मेने शिवोऽसाववमाननां स्वाम्।
खिन्नो विषण्णः स निवासभूमिम्,
निर्धारितां स्वां वसतिञ्चकार।। ३ ।।

आगरा नगरी म पहुँचने पर अपना भूपोचित सत्कार न पाकर शिवाजी ने इसे अपना अपमान समझा। उस खिन्न और उदास हुए शिवाजी ने अपनी आवास भूमि, जो उनके लिए पहले से निर्धारित कर दी गयी थी, पर पहुँचकर अपना डेरा डाल दिया।

लब्धावकाशो जयसिंहपुत्रः,
गर्वोन्नतांसस्तुरगाधिरूढः।
कोशे सुगुप्ताञ्छुरिकां दधानः,
समागतोऽसौ निशिताङ्करालाम्।। ४ ।।

राजा जयसिंह का पुत्र (रामसिंह) गर्व से ऊँचे किए हुए कन्धों वाला, घोड़े पर चढ़ा

हुआ, म्यान में तेज भयंकर तलवार लटकाये हुए, समय मिलने पर महाराज शिवाजी के पास पहुँचा।

सन्तोष्य वीरं स तु रामसिंहः,
कालोचितान्येव वचांसि धीरः।
निगद्य शूरं परिखिद्यमानम्,
सत्कारभावेन जगाद चेत्थम्।। ५ ।।

उस धैर्यशाली राजपुत्र रामसिंह ने खिन्न हुए शूरवीर शिवाजी को समयोचित बात कहकर, सन्तुष्ट करके उससे सत्कार भाव से इस प्रकार कहा—

खिन्नोऽस्मि राजन्! न समागतोऽहम्,
सत्कारहेतोः भवताञ्जनानाम्।
व्यस्तोऽहमासम् सदसिप्रभूणाम्,
विहाय रोषं मृदुतां भजस्व।। ६ ।।

रामसिंह ने कहा कि हे राजन! मुझे खेद है कि मैं आपका और आपके साथियों का सत्कार करने न आ सका। मैं राजा (औरंगजेब) की सभा में व्यस्त था। आप क्रोध त्यागकर कोमल स्वभाव वाले बनें।

नाऽहं विधेयो मुगलेश्वरस्य,
दानेन तस्याऽस्मि न पुष्टगात्रः।
दिल्लीश्वरोऽसौ जननायकोऽहम्,
स्वाधीनवृत्तिर्विचरामि लोके।। ७ ।।

हे राजपुत्र! मैं मुगल शासक औरंगजेब का नौकर नहीं हूँ और न ही उसके दिए हुए अन्न से मैं स्वस्थ शरीर वाला हूँ। वह दिल्ली का राजा है तो मैं भी जननायक हूँ। मैं स्वाधीन हूँ जहाँ चाहूँ वहाँ विचरण करूँ।

रुष्टं समालोक्य स राजपुत्रो वीरशिवन्तन्निजगाद नम्रः।
सिंहस्तु सिंहो नगरे वने वा, शौर्यं स्वकीयंनजहाति नूनम्।। ८ ।।

विनम्र हुए उस राजपुत्र (रामसिंह) ने वीर शिवाजी को नाराज देखकर इस प्रकार कहा कि हे राजन! नगर में हो या वन में हो सिंह तो सिंह ही रहता है और वह अपनी शूरता को कभी नहीं छोड़ता।

दत्वावधानंशृणु मे वचांसि, द्वि र्भाषिते नैव तु राजपुत्रः।
स्वप्राणमोहन्तु विधाय पृष्ठे, चाग्रेवयंवै स्व वचांसि कुर्मः।। ९ ।।

हे राजन ! तुम ध्यान देकर मेरी बात सुनो ! क्षत्रिय कभी झूठ नहीं बोलता। हम अपने प्राणों के मोह को महत्व न देकर अपने वचनों का ही पालन करते हैं।

प्रतिज्ञा या कृता पूर्वम्पित्रा सत्यवता मम।
मिथ्या सा न भवेल्लोके, प्रतिज्ञेयं दृढा मम।। १० ।।

हे राजन ! मेरे सत्यवादी पिता के द्वारा जो वचन प्रतिज्ञा रूप में तुम्हें दिए गये हैं वे किसी भी दशा में झूठ नहीं होंगे यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है।

प्राणा यावच्छरीरे मे, हस्ते खड्गो भयंकरः।
तावत्ते प्राणरक्षार्थम् यतिष्ये प्रणपालकः।। ११ ।।

हे राजन ! जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं और हाथ में भयंकर तलवार है तब तक प्रणपालक मैं तेरी रक्षा का प्रयत्न करता रहूँगा।

आश्वासितोऽसौ क्षितिपालकेन,
सभाम्प्रयातुम्मतिमाववन्ध।
आकार्य वीरान्निभृतञ्जगाद
विश्वासपात्रंनरिपुः कदापि।। १२ ।।

क्षत्रिय राजा रामसिंह के द्वारा आश्वस्त किए हुए शिवाजी ने औरंगजेब की सभा में जाने का विचार किया और अपने वीरों को एकान्त में बुलाकर कहा कि शत्रु (औरंगजेब) कभी भी विश्वास करने योग्य नहीं है।

नाऽसौ कुलीनो न च सत्यनिष्ठो,
वाचं स्वकीयाम्प्रतिपालको न।
क्रूरः कुचक्री कृतपापवृद्धः,
कुधीः कदापीह न दर्शनीयः।। १३ ।।

वह औरंगजेब न तो कुलीन है और न ही सत्यवादी है। वह अपने वचनों का पालन करने वाला नहीं है। वह क्रूर है, कुचक्री (षड्यन्त्र रचने वाला) अपने किए हुए पापों से ही बढ़ा हुआ है, दुर्बुद्धि है और दर्शन करने योग्य तो है ही नहीं।

अग्निर्न चोष्णः कथनन्तु मन्ये,
तेजोविहीनस्तपनश्च मन्ये।
चन्द्रोऽपि लोकन्दहतीतिमन्ये,
साधुर्महीपो न कदापि मन्ये।। १४ ।।

'अग्नि ठण्डी है' मैं इस बात को मान सकता हूँ। 'सूर्य तेजहीन है' यह भी मैं मान

सकता हूँ और यह भी मान सकता हूँ कि चन्द्रमा संसार को जलाता है परन्तु औरंगजेब साधु स्वभाव का है यह मैं कभी नहीं मान सकता।

यत्नैरनेकैरनलो यथा हि,
त्यक्त्वा स्व तापम्भजते न शैत्यम्।
नीचाशयोऽसौ मुगलस्तथैव,
स्वक्रौर्यभावन्न तु हास्यतीह।। १५ ।।

अनेक यत्न करने पर भी जैसे अग्नि अपनी उष्णता को छोड़कर शीतलता कभी भी धारण नहीं करती उसी प्रकार वह मुगलेश्वर नीचाशय अपनी क्रूरता को कभी नहीं छोड़ेगा।

विश्वासभूमिर्न कदापि धूर्तः,
शृद्धास्पदन्नैव शठः कदाचित्।
कारुण्यभावैः परिपूर्णदुष्टो,
हिनस्ति नैजान् कुलजान् जनान् वै।। १६ ।।

धूर्त व्यक्ति कभी भी विश्वास करने योग्य नहीं होता। शठ व्यक्ति कभी भी शृद्धा का पात्र नहीं होता। करुणा से भरा हुआ दुष्टव्यक्ति अपनें ही कुल के मनुष्यों को नष्ट कर देता है।

धर्मान्धिदृष्टि र्मुगलो महीपो
न त्यक्ष्यति स्वाङ्कुटिलाम्प्रवृत्तिम्।
पीयूषभावन्तु विषङ्कदापि,
शतैः प्रयत्नैरपि नैव धत्ते।। १७ ।।

धर्म के पीछे अन्धा बना वह मुगल बादशाह औरंगजेब अपने कुटिल स्वभाव को कभी हीं छोड़ेगा। सैंकड़ों प्रयत्न करने पर भी जहर अमृत के स्वभाव वाला कभी नहीं हो सकता।

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्नजहाति गन्धम्,
यन्त्रार्पितो मधुरतान्नजहाति वेक्षुः।
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम्,
व्यक्तिः स्वभाववशगः कुरुते हि कृत्यम्।। १८ ।।

काटा जाता हुआ चन्दन का वृक्ष अपनी गन्ध नहीं त्यागता। कोल्हू में पेरा जाता हुआ भी गन्ना अपनी मिठास नहीं छोड़ता। बूढ़ा होने पर भी हाथी अपनी मस्त चाल नहीं त्यागता। यह सत्य है कि मनुष्य (जीव) अपने स्वभाव के वशीभूत ही कार्य किया करता है।

११

राजपथ-पान्थः

आवासभूमिञ्जननायकस्य,
सम्प्राप्य राजन्यसुतः प्रवीरः।
प्रणम्य भूपङ्कृतनित्यकृत्यम्
स रामसिंहो निजगाद चेत्थम्।। १ ।।

क्षत्रियपुत्र, बलशाली रामसिंह जननायक महाराज शिवाजी की आवास-भूमि पर पहुँचकर, नित्यकर्म से निवृत हुए शिवाजी को प्रणाम करके इस प्रकार बोला—

राजन्! भवानद्य ससेवकस्तु,
प्रयास्यतीतस्तुरगाधिरूढः।
आसाद्य राज्ञोभवनं सपुत्रः
स्थानं विशिष्टन्तु लभेत नूनम्।। २ ।।

हे राजन ! आज आप अपने सेवकों सहित घोड़ों पर सवार होकर यहाँ से प्रस्थान करेंगे और राजा (औरंगजेब) के भवन में पहुँचकर अपने पुत्र सहित विशिष्ट स्थान प्राप्त करेंगे।

आशंकितःसन् रिपुमर्दनोऽसौ,
प्रणम्य शीघ्रन्तुलजाम्भवानीम्।
स्व सेवकाँश्चैवनिजात्मजं वै,
आहूय वीरान् सकलानवादीत्।। ३ ।।

शत्रुओं का मर्दन करने वाले शिवाजी औरंगजेब से शंकित होते हुए देवी तुलजा भवानी को प्रणाम करके अपने सभी वीर सैनिकों एवं पुत्र को बुलाकर इस प्रकार बोले—

विश्वासभूमिर्न कदापि धूर्त,
आशीविषोऽसौ विषदग्धदन्तः।
तस्मात्सतर्कास्तु तथा भवेम,
सर्पाद्यथा गारुडिकः सदैव।। ४ ।।

वह धूर्त औरंगजेब कभी भी विश्वास करने योग्य नहीं है। वह तो विषैले दाँतों वाला सर्प है। हमें उससे सदा उसी प्रकार सतर्क रहना है जिस प्रकार सर्पों को नचाने वाला सपेरा सर्प से सदा सावधान रहता है।

वीरा बलिष्ठा धृतगुप्तशस्त्रा,
ओजस्विनस्ते रिपुनाशदक्षाः।
अश्वाधिरूढङ्कविकां दधानमावृत्य
भूपं समुदं विचेलुः।। ५ ।।

शत्रुदल का विनाश करने में दक्ष, गुप्त शस्त्रों को धारण करने वाले, बलशाली वे ओजस्वी वीर, घोड़े पर सवार, हाथ में लगाम पकड़े हुए राजा (शिवाजी) को घेर कर प्रसन्नतापूर्वक चल दिए।

रणोद्भटास्ते सुभटा युवानो, दृढोन्नतांगा बलवीर्यपुष्टाः।
उत्सेकहीना सुगुणैरहीनाश, चेलुर्हि सार्धञ्जननायकेन।। ६ ।।

निरभिमानी, सद्गुणों से पूर्ण, बल और पराक्रम से भरे हुए, सुडौल और स्वस्थ अंगों वाले, रण कौशल दिखाने वाले युवक वीर सैनिक उस जननायक (महाराज शिवाजी) के साथ-साथ चल पड़े।

शस्त्रास्त्रनद्धो धृतराजवस्त्रः, क्षिप्रंहि घण्टापथमाससाद।
साक्षात्स्वयम्वीररसोहि मन्ये, समागतो धर्षयितुं प्रदुष्टान्।। ७ ।।

शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित, राजसी वेश-भूषा को सुन्दर ढंग से धारण किए हुए, अपने साथियों के साथ शीघ्र ही राजपथ पर आ गये। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो साक्षात वीर रस ही दुष्टों को दबाने के लिए स्वयं ही आ गया हो।

अनर्घ्यरत्नैर्मणिभिः सनाथङ्
ग्रैवेयकङ्कण्ठपदे दधानः।
कोशप्रगुप्तांनिशिताम्भवानीङ्
घण्टापथेऽशोभत वीरवीरः।। ८ ।।

अमूल्य रत्नों एवं मणियों से युक्त कण्ठहार को धारण किए हुए, म्यान में भली प्रकार रखी हुई भवानी नाम की तलवार को धारण किए हुए वीरों में भी वीर शिवाजी राजपथ पर सुशोभित हो रहे थे।

गच्छन्महीपस्तुरगाधिरूढो,
मित्रैस्स्वकीयैरनु गम्यमानः।
घण्टापथे सन्यवनांगनानाम्,
सौधस्थितानां हृदयं विवेश।। ९ ।।

अपने मित्रों से अनुगमन किया जाता हुआ, घोड़े पर सवार हुआ, शिवाजी, राजपथ पर चलते हुए भी ऊपर महलों में रहने वाली यवन नारियों के हृदय में जा बसा।

निशान्तकाले हि निशान्तबध्वः,
श्रुत्वा महीपागमनं स्व पुर्याम्।
परस्परन्ताः शिवशौर्यसक्ताश्
चक्रुः सुचर्चाङ्गृहचर्चितान्ताम्।। १० ।।

महाराज शिवाजी का अपनी नगरी में आना सुनकर रनिवास में रहने वाली बेगमें व अन्य नारियाँ, शिवाजी के शौर्य से उनके प्रति आकृष्ट हुई, सायंकाल आपस में मिलकर उस चर्चा को करती थीं जो उनके घरों में प्रायः हुआ करती थीं।

मुग्धास्तरुण्यस्स्तनभारनम्राः,
पीनस्तनाः पीननितम्बकम्राः।
वृद्धा युवत्यो ललनाः कुमार्य,
आजग्मुरालोकयितुं वरेण्यम्।। ११ ।।

अपने स्तनों के भार से झुकी हुई, बड़े-बड़े स्तनों वाली, स्थूल मोटे नितम्बों से सुन्दर लगने वाली वृद्धाएँ, युवतियाँ, भोली-भाली तरुणियाँ, कुमारियाँ एवं रूपवती ललनाएँ अ श्रेष्ठ शिवाजी को देखने के लिए आकर इकठ्ठी हो गयीं।

शान्ता अशान्ता रिपुपक्षकान्ताः,
श्रान्ता हि शान्तिम्मनसो विहाय।
दृष्टुंशिवन्तन्निजलोचनैस्तु
व्यग्रा हि तस्थुर्गतभीतिभावाः।।१२।।

शत्रुपक्ष की युवतियाँ (यवन नारियाँ) चाहे वे शान्त थीं या अशान्त थीं अथवा का में व्यस्त रहने के कारण थकी हुई थीं, वे सभी अपने चित्त की शान्ति को भुलाकर शिवाजी व अपनी आँखों से देखने के लिए व्यग्र बैठी थीं और उनको कोई भय नहीं था।

कौशेयवस्त्रावृतपीनदेह,
श्चार्वाधिरूढो धृतभीमखड्गः।
देशाभिमानोन्नतभालदेशो,
नेत्राणि तासां सफलीचकार।। १३ ।।

रेशमी वस्त्रों से ढके हुए स्वस्थ शरीर वाले, कराल कृपाण को धारण किए हुए, देश अभिमान से उन्नत मस्तक वाले, उत्तम घोड़े पर सवार शिवाजी ने उन मुगल नारियों के को सफल कर दिया।

गवाक्षलग्ना यवनांगनास्तास्
ताम्बूलसारेण सुरञ्जितोष्ठाः।

विस्फारिताक्ष्यः शिवराजरूपम्,
नेत्रैः स्वकीयैर्नितराम्पपुस्तत् ।। १४ ।।

पान के रस से रंगे होठों वाली, भवनों के झरोखों से लगी हुई, नेत्रों को विसफारित की हुई उन यवन नारियों ने शिवाजी के रूप का पान अपने नेत्रों से जी भर किया।

माराभ़िरामं, नयनाभिरामम्,
निजाश्रितानाम्विपदां विरामम्।
वीरस्वभावम्पुरुषार्थधामम्,
पपुर्युवत्यः समुदा प्रकामम्।। १५ ।।

कामदेव के समान सुन्दर, नेत्रों को अच्छा लगने वाले, अपने आश्रितों की विपत्तियों को दूर करने वाले, वीर स्वभाव वाले, पुरुषार्थ के धनी शिवाजी को (स्वरूप को) मुगल युवतियों ने मन भरकर देखा (पिया)।

काचित्स्वकीये हृदये त्वशान्ते,
धृत्वा कराग्रं सविषादमाह।
कन्दर्परूपः शिवराजभूपः,
दृष्टो मयानैव कथं स्व दृग्भ्याम्।। १६ ।।

कोई यवन युवति अपने बेचैन हृदय पर हाथ रखकर बड़े विषाद के साथ कह रही थी कि मैंने ही कामदेव जैसे स्वरूप वाला शिवाजी अपनी आँखों से क्यों नहीं देखा।

स पीयमानो मृदुयौवतेन,
तेजः स्वकीयंद्विगुणञ्चकार।
वह्निप्रतापात्कलधौतकान्ति,
र्देदीप्यमाना द्विगुणा विभाति।। १७ ।।

उन कोमलांगी यवन युवतियों के द्वारा पिये (देखे) जाते हुए शिवाजी ने दुगने तेज को धारण किया। अग्नि के सम्पर्क से सुवर्ण की चमक दुगनी बढ़ जाती है।

प्रधर्षयञ्छत्रुजनान्स्वकीयाँ
श्चेतांसि तेषाम्व्यथितानि कुर्वन्।
प्रवर्धमानो निजतेजसाऽसौ
समित्रचक्रः सुगढं ह्यवाप्नोत्।। १८ ।।

अपने शत्रुओं को अपने तेज से निस्तेज करते हुए और उनके चित्त को और अधिक व्यथित करते हुए, अपने तेज से और अधिक प्रभावशाली होते हुए वीर शिवाजी अपने मित्रों के साथ उस किले तक पहुँचे।

द्वारस्थिता ये सुभटाः सकुन्ता,
विलोक्य भूपं विवशाः कथञ्चित्।
भीता हि तस्मादवलोक्य वीरम्,
दूराद्धि ते वीरशिवं प्रणेमुः।। १९ ।।

किले के द्वार पर स्थित भाले लिए हुए जो सैनिक थे वे राजा शिवाजी को देखकर किसी प्रकार विवश हुए, शिवाजी से भयभीत हुए दूर से ही वीर शिवाजी को प्रणाम करने लगे।

सभागतः शिवः

अश्वाधिरूढैः सुभटैः स्वकीयैः,
शिवो वयस्यैरनुगम्यमानः।
द्वारं समुल्लंघ्य दृढम्विशालम्,
दिव्यं सुभव्यं भवनं ददर्श।। १ ।।

अपने घुड़सवार सैनिकों व मित्रों से अनुग़मन किये जाते हुए शिवाजी ने किले के प्रधान, विशाल व सुदृढ़ द्वार को पार करके एक अनोखे व भव्य भवन को देखा।

धौरेयो वीर-वीराणांशार्दूलसदृशो बली।
गर्वोन्नतविशालांसः, प्रविवेश सभागृहम्।। २ ।।

वीरों में भी अग्रणी वीर, सिंह के समान बलशाली, स्वाभिमान से उन्नत कन्धों वाले शिवाजी ने सभागृह में प्रवेश किया।

वारवाणसमाच्छन्नः शिरस्त्राणसुरक्षितः।
छुरिकाकृतवस्त्रान्तः, शिवो भूपमुपागतः।। ३ ।।

कवच धारण किए हुए, सर पर लोहे का टोप पहने हुए, वस्त्रों में कृपाण छिपाये हुए शिवाजी मुगल राजा औरंगजेब के पास पहुँचा।

खिन्नो भूत्वा महावीरो, महाराष्ट्राधिपो बली।
मुखमुद्रां समालोक्य, भूपस्येत्थं व्यचारयत्।। ४ ।।

महाराष्ट्र के अधिपति, महावीर, बलशाली शिवा ने राजा औरगंजेब की मुखमुद्रा देखकर, कुछ खिन्न होकर इस प्रकार सोचा।

नास्ति प्रसाद्यो मुगलेश्वरोऽयम्
नास्मिन्प्रतीतिरुचिता मदीया।
स्वभावजिह्मः प्रवनाशनस्तु,
कौटिल्यभावं न जहाति दुष्टः।। ५ ।।

यह मुगलेश खुशामद करने योग्य नहीं है। इसमें मुझे विश्वास नहीं करना चाहिए। स्वभाव से ही कुटिल एवं दुष्ट सर्प अपनी कुटिलता कभी नहीं छोड़ता।

निम्बः स्वकीयं सहजङ्कटुत्वम्,
मिष्टैः सुपाकैः परिवेष्ठितोऽपि।
माधुर्यभावन्तु शतप्रयत्नैः,
केन श्रुतं किम्भजते कदाचित्।। ६ ।।

मीठे पाकों से लिप्त नीम सैंकड़ों प्रयत्न करने पर भी अपने कडुवे स्वभाव को त्यागकर मीठा हो जाता है, क्या यह कभी किसी ने सुना है ?

पयः प्रदानम्पवनाशनानाँ
ल्लोके प्रसिद्धम्विषवर्धनाय।
सम्मानलब्धो मुगलो महीपः,
क्रूरो मयि स्यात्सुदृढा मतिर्मे।। ७ ।।

यह बात संसार में प्रसिद्ध है कि सर्पों को दूध पिलाना उनके विष वर्धन के लिए होता है। अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया हुआ यह मुगल बादशाह मुझ पर अवश्य क्रुर भाव वाला होगा यह विचार है।

सम्भाव्य मित्रागमनम्यथैव,
चोलूकवंशः स्व मुदञ्जहाति।
राष्ट्राधिपस्यागमनं विदित्वा,
खिन्ना बभूवुर्मुगलास्तथैव।। ८ ।।

जैसे सूर्य देव के आगमन की सम्भावना करके ही उल्लुओं का वंश अपनी प्रसन्नता त्याग देता है उसी प्रकार महाराष्ट्र के स्वामी शिवाजी का आगमन जानकर मुगल उदास हो गये।

अस्निग्धदृष्ट्या कुटिलान्तरात्मा,
निरीक्षमाणः समुपस्थितन्तम्।
लेभे न शान्तिं, विकरालकालम्,
विलोक्य जीवो लभते न शान्तिम्।। ९ ।।

अपने सामने आये हुए शिवाजी को क्रूर दृष्टि से देखते हुए, वह कुटिल आत्मा औरंगजेब चैन न पा सका। भला कोई प्राणी विकराल काल को देखकर कभी शान्ति ले पाया है।

स्वाभिमानी शिवस्तंत्र, मौगलं धर्मसूदनम्।
न ननाम निजम्भालं, नावदच्छीतलम्वचः।। १० ।।

(औरंगजेब के उस रुख को देखकर) स्वाभिमानी शिवाजी ने हिन्दू धर्म के विनाशक उस मुगल राजा को न तो अपना सिर झुकाया और न मीठे, मृदु वचन ही कहे।

दिल्लीमहीपेन शिवो महीपः,
स स्वाभिमानी न हि सत्कृतोऽपि।
दृष्टः सभायां न च पुण्यदृष्ट्या
तिरस्कृतोऽभूद् विकरालकालः।। ११ ।।

वह स्वाभिमानी महाराज शिवा दिल्लीश्वर औरंगजेब के द्वारा सत्कृत नहीं किया गया और न ही अच्छी दृष्टि से देखा गया, इस प्रकार अपमानित हुआ शिवा एक विकराल काल ही बन गया।

स्वस्मै प्रदत्तं सुपदं सभायां,
नौचित्यपूर्णं रुरुचे हितस्मै।
भूत्वाभिभूतः क्षितिपः शिवोऽसौ,
क्रोधाज्जगर्ज प्रबलः प्रतापी।। १२ ।।

सभा में अपने लिये दिया गया स्थान भी उसे उचित नहीं जँचा। अपमानित हुआ प्रबल प्रतापी शिवा क्रुद्ध हो उठा।

आतंकितास्ते यवनाः सभायां,
संवीक्ष्य क्रुद्धं नृपतिं वरेण्यम्।
निस्तेजसस्ते तु तथैव जाताः
यथा मृगेन्द्रं हि मृगा विलोक्य।। १३ ।।

औरंगजेब की सभा में क्रुद्ध हुए महाराज शिवाजी को देखकर यवन उसी प्रकार आतंकित और तेजहीन हो गये जैसे सिंह को देखकर मृग आतंकित और निस्तेज हो जाते हैं।

ऐक्षिष्ट वीरः सरूषा महीपम्,
स्वगोत्रजानां हतकं कुबुद्धिम्।
क्रूरः कुचक्री कृतपापभीतः,
प्राणान् रिरिक्षुर्नितराञ्चकम्पे।। १४ ।।

जैसे ही उस वीर शिवाजी ने गुस्से से, अपने ही खानदानियों की हत्या करने वाले, दुर्बुद्धि राजा औरंगजेब की ओर देखा तो वह क्रूर, कुचक्री अपने ही पापों से भयभीत अपने प्राणों की रक्षा करने का इच्छुक अत्यधिक कम्पित हो उठा।

उच्छ्वास-निश्वासनिरुद्धकण्ठो,
विचारमूढो निजवर्णहीनः।

क्रोधानलं वीक्ष्य महेश्वरस्य,
पीताभगात्रो मुगलो बभूव।। १५ ।।

श्वास-निश्वास के कारण रुद्धकण्ठ वाला, विचारहीन, अपनी स्वाभाविक कान्ति से हीन, वह मुगल बादशाह शिवाजी की क्रोधाग्नि को देखकर पीला पड़ गया।

भानोर्मयूखैः प्रखरैः प्रतप्ता,
वाञ्छन्ति जीवाः सुसुखाश्रयत्वम्।
त्रस्ता हि सभ्या मुगलात्मजास्ते
व्यग्रा अभूवन्नसुरक्षणाय।। १६ ।।

प्रचण्ड सूर्य की प्रखर किरणों से प्रतप्त जीव सुखद आश्रय की कामना किया करते हैं। औरंगजेब की सभा में सभी मुगल शिवाजी से डरे हुए अपने-अपने प्राणों की रक्षा करने में व्यग्र हो गये।

नाराचविद्धो विहगो यथैव,
भूत्वाऽसमर्थः कुरुते न किञ्चित्।
क्रोधाग्निदग्धो निजसत्वहीनः,
शेके न कर्तुन्तु तथैव भूपः।। १७ ।।

जिस प्रकार बाण से बिधा हुआ पक्षी असमर्थ होकर कुंछ भी नहीं कर पाता उसी प्रकार शिवाजी की क्रोधाग्नि से जलता हुआ, पौरुषहीन बादशाह औरंगजेब कुछ भी नहीं कर सका।

कालुष्यभावोपगतो महीपः
कर्तव्यमूढस्तु विवेकहीनः।
शार्दूलभीतो मृगपोततुल्यो,
वक्तुन्न शेके निजसेवकान् वै।। १८ ।।

अपने मन में कपट भाव लिए हुए, कर्त्तव्य मूढ एवं विचार शून्य हुआ बादशाह औरंगजेब, सिंह से डरे हुए मृग के बच्चे के समान अपने सेवकों से भी कुछ कहने में समर्थ न हो सका।

सँल्लक्ष्य चोग्रं विकरालरूपङ्
कोपाग्निसन्तप्तमुखङ्करालम्।
दिल्लीपतिस्तस्य सहायकाश्च,
भूताः सभायांशवसदृशा वै।। १९।।

शिवाजी के उग्र एवं विकराल रूप को व क्रोध की अग्नि से दहकते हुए भयंकर मुख को देखकर दिल्लीपति औरंगजेब और उसके सभी सहायक सभा में शव के सदृश हो गये।

तं रोद्धुकामो नवरंगजीवः,
उच्चासनस्थः नृपनीतिदक्षः।
संकेतमात्रेण मनोविकारम्,
विश्वस्तभृत्येषु वहिश्चकार।। २० ।।

राजनीति में दक्ष, अपने उच्च आसन पर बैठे हुए, उस शिवाजी को वहीं रोक लेने की इच्छा वाले औरंगजेब ने अपने विश्वस्त सेवकों को संकेत से अपने मन के भाव बता दिए।

सिंहो निरीहान्वनजान्यथैव,
चोपेक्ष्य नित्यं सरति प्रतापी।
वीरस्तथाऽसौ मुगलान्निरीहा
नुपेक्ष्य धूर्तान् वहिराजगाम।। २१ ।।

जिस प्रकार वन के निरीह पशुओं की उपेक्षा करके प्रतापी सिंह सदा ही इधर-उधर घूमता रहता है उसी प्रकार वह वीर शिवाजी भी उन धूर्त, निरीह मुगलों की उपेक्षा करके किले से बाहर आ गया।

कृपाणपाणिस्तनुजेन सार्धम्,
विश्वस्तवीरैरनुगम्यमानः।
क्षिप्रं स्वकीयां स निवासभूमि-
मासाद्य चिन्ताधृतजीवनोऽभूत्।। २२ ।।

अपने विश्वस्त वीरों से अनुगमन किए जाते हुए, हाथ में तलवार लिए हुए, शिवाजी अपने पुत्र के साथ शीघ्र ही अपने निवास स्थान पर पहुँचकर चिन्ताग्रस्त हो गये।

१३

कारागारे महावीरः

पादाहतः पवनभुक् प्रतिकर्तुकामो
दंष्टुं सदैव यतते विषदग्धदन्तैः।
दंष्टो जनो न सहते गरलप्रभावञ्
जानाति चेत् स विषमारण योग्यविद्याम्।। १ ।।

पैरों से ठुकराया हुआ सर्प, बदला लेने की इच्छा वाला अपने विष भरे दाँतों से काटने का सदैव प्रयत्न करता है। सर्प द्वारा काटा हुआ व्यक्ति उसके विष-प्रभाव को तभी नहीं भोगता यदि वह विषमारण-विद्या को जानता है।

राष्ट्राधिपः शिववरो निजकैर्वयस्यै-
र्हस्तागतोऽपि तनयेन समञ्जगाम।
इत्थं विचरजलवीचितरङ्कचक्री,
नैशं सुखन्न लभते कुटिलो महीपः।। २ ।।

मेरे हाथ में आया, महाराष्ट्र का अधिपति शिवाजी अपने साथियों के साथ व पुत्र के साथ मेरे हाथों से निकल गया। इस प्रकार विचारों की जल-लहरों में डूबा हुआ वह कुटिल बादशाह औरंगजेब रात को सुख से सो नहीं पा रहा था।

बध्वा शिवं सतनुजं सुभटञ्जिघांसु-
रीर्ष्याग्निदाहजनितान्तु सुगाढपीड़ाम्।
भूपः सदैव सहते भजते न निद्राम्,
भीतो न कोऽपि सहजाँल्लभते प्रशान्तिम्।। ३ ।।

वीर योद्धा शिवाजी को उसके पुत्र के सहित बन्दी बनाकर हत्या करने की इच्छा करने वाला बादशाह औरंगजेब, ईर्ष्या की अग्नि की दाह से उत्पन्न होने वाली तीव्र पीड़ा को ही सहन करता है, रात को सो भी नहीं पाता। ठीक ही है डरा हुआ व्यक्ति सहज शान्ति को कभी नहीं ले पाता।

राजन्यपुत्रः प्रणपालकोऽसौ,
विज्ञाय भावम्मुगलेश्वरस्य।
असमारयत्पूर्वकृताम्प्रतिज्ञां,
दिल्लीश्वरन्तज्जनकेन स्वेन।। ४ ।।

अपने वचनों का पालन करने वाले, उस क्षत्रिय पुत्र राजा रामसिंह ने मुगल बादशाह

औरंगजेब की बुरी नीयत जानकर अपने पिता के द्वारा पहले दिए हुए वचनों को (जो शिवाजी को उन्होंने आगरा आने से पूर्व दिये थे) दिल्लीपति औरंगजेब को याद कराया।

आश्रुत्य पित्रा जननायकोऽयम्
'ते प्राणहानिर्न कदापि भूयात्'।
सम्प्रेषितोऽतस्तु मया महीपः,
संरक्षणीयो निजजीवितेन।। ५ ।।

हे राजन ! (औरंगजेब) यह जननायक (वीर शिवा) मेरे पिताजी ने यह वचन देकर यहाँ भेजा है कि 'तेरे प्राणों को कोई भय नहीं होगा'। अतएव यह (शिवाजी) राजा मेरे द्वारा प्राण देकर भी रक्षा करने योग्य है।

घूर्वापरन्त्वं सुविचार्य नूनम् सम्यग्विमृश्याश्रवणम्पितुर्मे।
कृत्यन्त्वयातत्करणीयमत्र, राज्यम्भवेत्ते सवलं हि येन।। ६ ।।

हे राजन ! तू अपना आगा-पीछा (हिताहित) भली प्रकार विचारकर और मेरे पिताजी की प्रतिज्ञा को सोच-समझकर वही कार्य करना जिससे तेरा राज्य सबल बने।

विभाव्य सर्वं स्वहिताहितं वै,
प्रसादयामास स रामसिंहम्।
शिवञ्जिघांसुः कुटिलस्वभावो,
जगाद जिह्मो विषदग्धचेताः।। ७ ।।

अपना भला-बुरा सोचकर उस कुटिल औरंगजेब ने, उस क्षत्रिय राजा रामसिंह को प्रसन्न किया और शिवाजी की हत्या करने के इच्छुक, कुटिल स्वभाव वाले, विष से भरे हुए चित्त वाले, धूर्त औरंगजेब ने रामसिंह से इस प्रकार कहा—

नाऽहम्प्रतिज्ञाञ्जनकस्य ते तु,
त्वया प्रदत्तानि वचांसि चैव।
इत्थन्त्वया वीर ! न वाच्यमत्र,
मृषा विधातुं हि कदापि शक्तः।। ८ ।।

हे क्षत्रिय वीर ! तेरे पिता के द्वारा की हुयी प्रतिज्ञा को एवं तेरे द्वारा दिए गये वचनों को मैं असत्य करने में कभी भी समर्थ नहीं हूँ। तुझे ऐसा कभी नहीं कहना चाहिए।

दिल्लीमहीपो नृपपुत्रभीत,
आश्वास्य वीरम्प्रणपालकन्तम्।
प्रसाद्य शूरं सरुषम्वदन्तम्,
स प्राहिणोत्तम्भवनत्तदीयम्।। ९ ।।

क्षत्रिय राजपुत्र रामसिंह से डरे हुए दिल्लीश्वर औरंगजेब ने उस प्रतिज्ञा पालक वीर को आश्वस्त करके और गुस्से से बात करते हुए शूर को प्रसन्न करके उसके घर भेज दिया।

सम्प्रेष्य राजन्यकुलावतंस-
ङ्गृहन्तदीयङ्कुटिलोमहीपः।
फौलादखाँ नामधरं विशिष्ट-
माहूय भृत्यं निभृतञ्जगाद।। १० ।।

उस कुटिल बादशाह औरंगजेब नें उस क्षत्रिय कुलभूषण रामसिंह को उसके घर भेजकर, फौलादखाँ नाम के विशेष हब्शी सेवक को बुलाकर एकान्त में कहा।

सम्प्राप्य दुर्गंऽशिव सेवितन्तम्,
सरक्षकस्त्वम्परितः सुरक्षेः।
तत्र प्रवेष्टुन्न भवेत्समर्थ,
आज्ञाम्बिना कोऽपि जनः कदापि।। ११ ।।

हे फौलाद खाँ ! तू शीघ्र ही, शिवाजी के निवास वाले किले पर पहुँच कर अपने रक्षकों के साथ चारों ओर से उसकी सुरक्षा कर। उस किले में बिना आज्ञा के कोई भी मनुष्य किसी भी दशा में प्रवेश न कर पाये।

वहिर्न गच्छेत्तु कदापि दुर्गात्,
स पर्वताखुः शिवनामधेयः।
सम्भूय सर्वे करुणां विहाय,
प्रपीडयेयुर्नितरां सदैव।। १२ ।।

वह शिवाजी नाम वाला पहाड़ी चूहा किसी भी हालत में किले से बाहर न जाने पाये और तुम मिलकर करुणा त्यागकर उसे सताते रहना।

फौलादखानः करुणाविहीनः,
क्रूरान्वलिष्ठान्निगृहीतशस्त्रान्।
शिवं निरोद्धुम्भवने तदीये,
प्रशास्तृभृत्यान्नियुयोज क्रूरः।। १३ ।।

शिवाजी को उनके ही महल में रोके रखने के लिए उस क्रूर करुणा विहीन फौलाद खाँ ने बलवान, क्रूर एवं शस्त्रधारी राज्य सेवकों (पहरेदारों) को नियुक्त कर दिया।

क्रूरानशिष्टान्धृततीव्रशस्त्रा
न्नियोज्य कारागृहरक्षणाय।

शिवं सपुत्रं निजकण्टकन्तम्,
निहन्तुकामो नृपतिर्बभूव।। १४ ।।

बादशाह, कारागृह की रक्षा के लिए क्रूर, अशिष्ट एवं तेजधार वाले शस्त्रों को धारण करने वाले रक्षकों को नियुक्त करके अपने मार्ग में कण्टक बने शिवाजी को उसके पुत्र सहित हत्या करने की लालसा वाला बन गया।

कारानियुक्ताः पुरुषाः कठोरा,
फौलादखानस्य निदेशवाहाः।
अस्त्रैः सुशस्त्रैर्निशितैः कृपाणैः,
सुसज्जिता कर्मरता बभूवुः।। १५ ।।

अस्त्र-शस्त्रों एवं तीक्ष्ण धार वाली तलवारों से भली प्रकार सज्जित कारागार पर नियुक्त कठोर स्वभाव वाले पहरेदार पहरा देने लगे।

दिल्लीश्वरोऽसौ सुभटञ्जिघांसुः,
कारागृहे तं रुरुधे कुचक्री।
सर्पादृते कः पवनाशनस्य,
घ्रातुम्विमूढो यतताम्मुखं वै।। १६ ।।

वीर शिवा की हत्या करने के इच्छुक कुचक्री दिल्लीश्वर औरंगजेब ने शिवाजी को कैद में ही बन्द कर लिया। सर्प के मुख को सर्प के अतिरिक्त भला कौन मूर्ख सूँघने का यत्न करेगा।

नासीत्समर्थो मशकोऽपि तत्र,
तेषाम्विनाज्ञाम्भवनम्प्रवेष्टुम्।
राज्ञा नियुक्तात्सुजनादृते वै,
शक्तः प्रवेष्टुं न हि कश्चिदासीत्।। १७ ।।

उन रक्षकों की आज्ञा के बिना उस भवन में मच्छर भी प्रवेश करने में समर्थ नहीं था। राजा के द्वारा नियुक्त किए हुए मनुष्य के अतिरिक्त कोई भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता था।

भीतः शिवातो नवरंगजीवः,
स्वप्नागतं वीरशिवं विलोक्य।
ससम्भ्रमं स्वं शयनं विहाय,
शिवः शिवोऽयं वदतीति वाचम्।। १८ ।।

शिवाजी से सदा भयभीत रहने वाला औरंगजेब स्वप्न में भी वीर शिवा को देखकर हड़बड़ाया हुआ अपने पलंग को छोड़कर 'यह शिवाजी है', ऐसा कहता रहता है।

विहाय सर्वंनिजसौख्यजातं,
शिवञ्जिघांसोर्यवनेश्वरस्य।
एकं हि लक्ष्यं नृपतेस्तदासीत्
समूलनाशस्तु शिवस्य भूयात्।। १९ ।।

अपने समस्त सुखों को त्यागकर, महाराज शिवाजी की हत्या करने के उत्सुक मुगल बादशाह औरंगजेब का एक ही उद्देश्य था कि शिवाजी को मूल सहित नष्ट कर दिया जाय।

प्रशास्तृवीरैर्निशितास्त्रहस्तैः,
सुरक्षिते सर्वरूपैरभेद्ये।
निरुध्य बन्दीभवने शिवंन्तत्र,
चिन्ताविहीनो न नृपो बभूव।। २० ।।

तेज धार वाले अस्त्रों को हाथ में लिए हुए, पहरेदारों से सभी प्रकार से सुरक्षित अभेद्य किले में महाराज शिवाजी को बन्दी बनाकर भी वह मुगल राजा (औरंगजेब) निश्चिन्त नहीं हुआ था।

चिकित्सकः

कश्चिद्विशिष्टोह्युपनेत्रधारी,
नीलैः सुवस्त्रैः परिवेष्टितो वै।
औरंगजीवस्य निदेशपालो,
वैद्यः सुवृद्धश्शिवमाजगाम ।। १ ।।

कोई प्रसिद्ध, बूढ़ा वैद्य (हकीम) नीले वस्त्र पहिने हुए, आँखों पर चश्मा चढ़ाये हुए, औरंगजेब की आज्ञा को मानने वाला, महाराज शिवाजी के पास पहुँचा।

प्रौढं सुकूर्चम्प्रविलम्बमानं,
तुन्दं विशालं विपुलं दधानः।
पीनः प्रचण्डो धृतदण्डहस्तश,
चिकित्सकोऽसौ शिवमाजगाम ।। २ ।।

लम्बी-चौड़ी, स्वस्थ, लटकती हुई दाढ़ी को एवं विशाल तोंद को लिए हुए, हाथ में लठिया लिए हुए, मोटा-ताजा तेज तर्रार एक वैद्य महाराज शिवाजी के पास पहुँचा'

आसीत्समंन्तेन निदेशवाहो,
भक्तो विनम्रो युवको वलिष्ठः।
कुक्षौ स्वकीये पिटकं दधानः,
कर्त्तव्यनिष्ठः भवनं प्रविष्टः ।। ३ ।।

उस वैद्य (शाही हकीम) के साथ उसका भक्त, बलवान विनम्र आज्ञाकारी युवक नौकर भी था। वह कर्त्तव्यनिष्ठ सेवक अपनी बगल में एक पिटारी को लिए हुए वैद्य के साथ-साथ उस भवन में प्रविष्ट हुआ।

ताम्बूल-सारेण सुरञ्जितौष्ठस,
तच्चर्वणव्यस्तमुखाग्रभागः।
संलक्ष्य वीरं सरुजं शयानम्,
वैद्यस्सहेलं शिवराजमाह ।। ४ ।।

पान के रस से रंगे हुए ओठों वाला, पान चबाने में व्यस्त मुखवाला वैद्य, रोग शैय्या पर लेटे हुए वीर शिवाजी से बड़ी लापरवाही से इस तरह बोला—

रुग्णश् शिवोऽसावपराधहीनश्,
शेते कथं कुत्र विशालबुद्धिः।
रोगेण केनाऽपि न बाधितोऽस्ति,
कारागृहत्त्राणमवेक्षमाणः ।।५।।

वह विशाल बुद्धि वाला, अपराधहीन, रोगी शिवा कहाँ और कैसे है ? वह किसी भी रोग से पीड़ित नहीं है अपितु वह तो इस कैद से छुटकारा चाह रहा है।

अस्तीह रुग्णो जननायकोऽयं
रोगस्त्वसाध्यो विदितो मनुष्यैः।
नीरोगमेनं विदधातुकामो,
वैद्योऽस्मि दक्षो विरूजं विधातुम्।। ६ ।।

यह जननायक शिवा बहुत ही बीमार है और उसका रोग असाध्य है ऐसा जनता जानती है। इसे स्वस्थ बनाने की कामना वाला मैं इसे पूर्ण स्वस्थ बनाने में दक्ष वैद्य हूँ।

स्वाधीनतासौख्यविहीनताया रोगो
महान्पीडयतीह नित्यम्।
रोगन्त्वसाध्यन्त्वरितं समर्थः,
कर्तुं विनष्टं कुशलोऽस्मि वैद्यः।। ७ ।।

स्वाधीनता के सुख के छिन जाने का महान रोग इस शिवा को बुरी तरह सता रहा है। इस असाध्य रोग को मैं जल्दी ही नष्ट करने में समर्थ और कुशल वैद्य हूँ।

कुत्रास्ति शार्दूलपराक्रमोऽसौ,
चिकित्सितुन्तं समुपस्थितोऽस्मि।
आपीय चूर्णञ्जलमिश्रितं वै,
स्वस्था मतिर्मे सबलो भवेत्सः।। ८ ।।

सिंह के समान पराक्रमी वह शिवा कहाँ है। मैं उसका इलाज करने के लिए यहाँ आया हूँ। मेरा पक्का मत है कि वह बीमार शिवा इस चूर्ण मिश्रित जल को पीकर स्वस्थ हो जायेगा।

इत्थन्निगद्य स्व च सेवकन्तम्,
प्रोवाच, शीघ्रं पिटकं प्रदेहि।
प्रोद्घाट्य पिष्टं पिटकाद् गृहीत्वा,
सम्मेल्यतोयं प्रददौ शिवाय।। ९ ।।

इस प्रकार जोर से कहकर उस वैद्य ने अपने सेवक को आदेश दिया कि जल्दी से

दवाओं की पेटी दो। पेटी को खोलकर पेटी से कुछ चूर्ण लेकर, जल में मिलाकर महाराज शिवाजी को दिया।

क्रोधाग्निदग्धोज्वलितान्तरात्मा,
तच्चूर्णकं प्राणहरं विदित्वा।
प्रोवाच वैद्यं सरुषं महीन्द्रः,
पातुन्न शक्तः सलिलं कदापि।। १० ।।

क्रोध की अग्नि से जलते हुए, दुःखी अन्तरात्मा वाले शिवाजी ने उस चूर्ण को प्राणों को हरने वाला जानकर क्रोध से वैद्य से कहा कि मैं इस जल को कभी भी नहीं पीऊँगा।

पेयन्त्वयेदं सलिलं हि नूनं,
प्राणास्त्वदीया नितराममूल्याः।
चिन्तातुरस्त्वम्भवितुन्न शक्तो,
विचारमूढो लभते न मुक्तिम्।। ११ ।।

वैद्य ने कहा कि तुम्हें यह जल अवश्य पीना है। तुम्हारे प्राण अमूल्य हैं। तुम्हें चिन्तातुर नहीं होना चाहिए। विचारमूढ व्यक्ति मुक्ति कभी नहीं पाता।

विलोक्य मामत्र कथं विषण्णो,
जातः कथन्त्वं कुविचारमग्नः।
स्वयं पिबेच्चेत् कुशलन्त्वदीयम्,
नो चेदहन्त्वां विवशं करोमि।। १२ ।।

मुझे यहाँ देखकर तू उदास क्यों हो गया है और बुरे-बुरे विचारों में क्यों डूब गया है ? यदि तू इस जल को स्वयं ही पी लेता है तो तेरा भला है वरना मैं तुझे इस जल को पीने के लिए विवश कर दूँगा।

श्रुत्वा निदेशं भिषजः कठोरम्
मत्वाजलन्तद् गरलं करालम्।
तत्कालभीतेः समुपागतायास्
त्रातुं स्वजीवं यतवान् बभूव।। १३ ।।

उस वैद्य के कठोर आदेश को सुनकर और जल को भयंकर विष मानकर महाराज शिवाजी उस समय आये हुए भय से अपने आप को बचाने के लिए प्रयत्नशील हो गये।

अन्येऽपि सर्वे समुपस्थिता ये,
भूता विमूढा गतचेतनास्ते।

यावत्सपात्र स्वकरे निदध्यात्,
तावच्छिवस्तत् सजलन्ननाश।। १४ ।।

वहाँ पर उपस्थित अन्य सभी विमूढ एवं चेतनाहीन से हो गये। जब तक वह वैद्य उस जल वाले पात्र को अपने हाथ में लेता तब तक शिवाजी ने पात्र ही तोड़ दिया।

विहाय शय्यां चतुरो बलिष्ठो,
वैद्यं सुवृद्धं निपुणं निरीक्ष्य।
कृत्वा प्रहारन्त्वरितन्नरेन्द्रो
धृत्वाहि कूर्चन्तरसाचकर्ष।। १५ ।।

उस बलवान, चतुर शिवाजी ने अपना बिस्तर छोड़कर, उस बूढ़े वैद्य को भली प्रकार देखकर, जल्दी से तेज प्रहार करके, उसकी डाढ़ी पकड़कर जोर से खींची।

पादप्रहारेण निपात्य भूमौ,
वैद्यं शिवोऽसौनिपुणं ददर्श।
पादाहतोऽसौ न बभूव रुष्टो,
भूत्वाप्रसन्नः समुदं जहास।। १६ ।।

उस वीर शिवाजी ने उस वैद्य को अपने पैर के प्रहार से भूमि पर गिराकर ध्यान से देखा। पैर से प्रहार किया हुआ वैद्य नाराज नहीं हुआ अपितु प्रसन्न होकर खुशी से हँसने लगा।

विहीनकूर्चं वदनं विलोक्य,
क्रुद्धोऽपि भूपश्चकितो बभूव।
मुरेश्वरन्तम्परिचीय सम्यक्,
प्रोवाच मित्रं स विमुक्तमन्युः।। १७ ।।

उस वैद्य के दाढ़ी विहीन मुख को देखकर क्रोधित महाराज शिवाजी भी चकित हो गये अपने बाल-मित्र मुरेश्वर को भली प्रकार पहिचान कर प्रसन्न हुए शिवाजी ने उससे कहा—

यत्रप्रविष्टुम्मशको न शक्तो
धूर्तान्प्रवञ्च्यात्र कथम्प्रविष्टः ?
मुरेश्वरस्तन्निजवालमित्रम्,
मुक्तेरूपायं सकलञ्जजाप।। १८ ।।

हे मित्र ! जहाँ एक मच्छर भी प्रवेश नहीं कर सकता वहीं पर तू इन धूर्तों को धोखा देकर यहाँ किस प्रकार प्रवेश कर सका। कुछ और न कहकर उस वीर मुरेश्वर ने अपने उस बालमित्र से बन्धन से छूटने का उपाय धीरे से बताया।

गूढं रहस्यं श्रवणेन्द्रियेऽसौ
संलप्य कूर्चं तरसा दधार।
संकेतमात्रेण विवोध्य सिंहम्,
यानाय शीघ्रं स्वमतिञ्चकार।। १९ ।।

उस मुरेश्वर वीर ने शिवाजी के कान में सारा रहस्य बताकर जल्दी से अपनी दाढ़ी को यथा स्थान लगा लिया। संकेत मात्र से सिंह को सावधान करके जाने का विचार किया।

धृत्वा प्रसन्नश्शिवराजदत्तं-
कण्ठे स्वकीये उपहारह्हारम्।
यथागतोऽसौ लगुडं दधानो,
भृत्येन सार्धन्तु तथा जगाम।। २० ।।

महाराज शिवाजी के द्वारा उपाहार में दिए हुए हार को अपने कण्ठ में धारण कर प्रसन्न हुआ वह वैद्य जिस प्रकार हाथ में लठिया लिए हुए आया था उसी प्रकार अपने सेवक के साथ लौट गया।

मीनो यथा प्राप्य जलं प्रगाढं,
तुष्टो विपत्तिं भजते न भूयः।
ज्ञात्वा सुभेदं गतखेददुःखो,
भूपस्तथैव प्रबलो बभूव।। २१ ।।

जिस प्रकार एक मछली गहरे जल को प्राप्त करके प्रसन्न होती है और विपत्ति के दोबारा आने की परवाह नहीं करती उसी प्रकार महाराज शिवाजी भी मुरेश्वर के द्वारा बताए गये रहस्य को जानकर एकदम प्रबल हो उठे।

जाड्येन वद्धो निज दुर्विपाकात्,
दैवाद्विमुक्तो भवितुं समर्थः।
संगोप्य तूलेष्वनलं कुबुद्धे !
जानासि वह्निं गतजीवनन्त्वम्।। २२ ।।

मैं अपनी मूर्खता से दुर्भाग्यवश तेरे बन्धन में आ गया था, भाग्यवश मैं जेल से मुक्त होने में भी समर्थ हूँ। हे कुबुद्धि ! तू रुई में अग्नि छिपाकर यह समझता है कि अग्नि समाप्त हो गयी।

बन्दी शिवः

बद्धस्त्वयाऽहं न भवेत्प्रसन्नो,
जानाति लोकस्त्वनलप्रभावम्।
तूलावृतस्तिष्ठति नैव ,वह्निदग्ध्वा
हि तूलं समुपैति भावम्।। १ ।।

हे औरंगजेब ! तेरे द्वारा मैं कैद कर लिया गया हूँ, यह सोचकर तू प्रसन्न मत हो। यह संसार अग्नि के प्रभाव को जानता है। रूई में लपेटी हुई अग्नि कभी छिपती नहीं, वह तो रूई को जलाकर अपने स्वाभाविक गुण को प्राप्त कर ही लेती है।

कश्चिन्न शक्तो रसनां स्वकीयाम्,
दन्तैः स्वकीयैः स्वयमेव छेत्तुम्।
कारागृहे मां तु निवध्य धूर्त !
कर्त्तव्यमूढः प्रतिभासि मे त्वम्।। २ ।।

हे धूर्त मुगलराज ! कोई भी व्यक्ति अपनी जीभ को अपने ही दाँतों से नहीं काट सकता। मुझे कारागार में बन्द करके, तूने क्या किया ? मुझे तो तू कर्त्तव्यमूढ प्रतीत हो रहा है।

द्रोणो यदित्वन्तु सपादयुक्तो,
लक्षो यदि त्वन्तु सपादलक्षः।
वह्निर्यदित्वम्प्रखरः पयोदो,
त्वां दीक्षितुं वै सवलोऽस्मि नित्यम्।। ३ ।।

हे मुगलराज ! यदि तू द्रोण है तो मैं सवा द्रोण हूँ। यदि तू लाख है तो मैं सवा लाख हूँ। यदि तू अग्नि है तो मैं तेज धार से बरसने वाला बादल हूँ। तुझे नष्ट करने के लिए मैं सदा सबल और समर्थ हूँ।

काष्ठो यदि त्वन्तु हिरण्यरेता,
मेघस्त्वमुग्रः प्रबलो नभोगः।
कालेन बद्धो मृगराजराजः,
कालः सदैवास्ति महाबलिष्ठः।। ४ ।।

हे मुगल ! यदि तू काठ है तो मैं तेरे लिए अग्नि हूँ। यदि तू मेघ है तो मैं भी बलवान और उग्र स्वभाव वाला वायु हूँ। यह तो एक समय है कि सिंहों का भी राजा (मैं) तेरा बन्दी बन गया है। समय सदा ही महाबलवान होता है।

आशीविषस्त्वं विषदाहकोऽहं,
तीक्ष्णाँस्त्वदीयान् विषदग्धदन्तान्।
सन्त्रोट्य शीघ्रं स्ववशे विधाय,
निर्जीवितन्त्वां तु विधातुकामः।। ५ ।।

यदि तू जहरीला सर्प है तो मैं भी जहर को समाप्त कर देने वाला व्यक्ति हूँ। मैं शीघ्र ही तेरे विष भरे इन तेज दान्तों को तोड़कर तुझे अपने वश में करके निर्जीव बनाने का अभिलाषी हूँ।

दन्ताँस्त्वदीयाँस्तरसा प्रगाढै,
मुँष्टिप्रहारैः करुणाविहीनैः।
भूमौ विकीर्य प्रहसन्प्रवक्ष्ये,
भूयाःस्वयन्त्वं निजकर्मभोक्ता।। ६ ।।

हे धूर्त ! मैं शीघ्र ही अपने करुणा विहीन, भारी घूँसों के प्रहार से तेरे दाँतों को भूमि पर गिराकर हँसता हुआ कहूँगा कि ले तू अब अपने कर्मों का फल भोग।

दुष्कर्मशीलो नृपतिः सदैव,
साकं स्वकृत्यैर्नरकम्प्रयाति।
क्षिप्रं हि सार्धन्निजपापकृत्यैः,
प्रयास्यसि त्वं निरयं दुरात्मन्।। ७ ।।

हे दुष्ट ! दुष्कर्म करने वाला राजा सदा ही अपने कर्मों के साथ नरक को जाता है। तू भी शीघ्र ही अपने पाप कर्मों के साथ नरक गमन करेगा।

द्वेषाग्निदग्धो निजवंशघाती,
जानासि न त्वन्निजकर्मपाकम्।
राज्यं विशालं विभवञ्च गात्रम्,
यास्यन्ति नाशं नियतंदुरात्मन्।। ८ ।।

हे दुरात्मा औरंगजेब ! तू द्वेष की अग्नि से जला-भुना अपने ही वंश का घात करने वाला अपने कर्मों के फल को नहीं जान रहा। विशाल राज्य, अतुल वैभव एवं शरीर ये सभी निश्चित रूप से नष्ट हो जायेंगे।

क्रौर्य्यन्त्वदीयञ्जगति प्रसिद्धं,
शौर्यम्मदीयं नितरां विशुद्धम्।
कारागृहन्ते त्वरितं विहाय,
यास्यामि भूत्वा पवनोऽशरीरः।। ९ ।।

हे औरंगजेब ! तेरी क्रूरता सारे संसार में प्रसिद्ध है और मेरी शूरता पूर्ण रूप से विशुद्ध है। मैं शीघ्र ही तेरे बन्दीगृह को छोड़कर अशरीरी वायु बनकर यहाँ से निकल जाऊँगा।

जानासि नूनं न हि सिंहभावम्,
सिंहस्तु बद्धोऽपि सदैव सिंहः।
उच्चासनस्थोऽपि शृगालपोतो,
निहन्यतेऽसौ मृगराजपुत्रैः ।। १० ।।

हे मूर्ख ! तू निश्चित ही सिंह के स्वभाव को नहीं जानता। सिंह तो बंधा हुआ भी सिंह ही रहता है। गीदड़ का बच्चा उच्च आसन पर बैठा हुआ भी सिंह-पुत्रों द्वारा मार दिया जाता है।

विश्वासपात्रं सुहृदो मदीया,
यावद्वयस्या मम गोत्रजाश्च।
नायान्ति तावत्सुखभाक् भवेस्त्वम्,
प्रतीक्षते त्वां यमराजदण्डः ।। ११ ।।

हे औरंगजेब ! जब तक मेरे विश्वासपात्र मित्र, साथी और मेरे खानदानी व्यक्ति नहीं आते तब तक तू सुख भोग ले, यमराज का दण्ड तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

घुणेनजग्धः सुविशालवृक्षो,
निःसारभूतोऽपि विभाति पुष्टः।
चिन्तावलीढस्तु वलिष्ठगात्रो,
वीरः शिवोऽपिक्षयतामवाप ।। १२ ।।

घुन से खाया हुआ विशाल वृक्ष निःसार होते हुए भी पुष्ट सा दीखता है। चिन्ता द्वारा क्षीण किये हुए बलिष्ठ गात्र होते हुए वीर शिवाजी भी अन्दर से खोखले कमजोर होने लगे।

विदग्धबुद्धिर्विपदाङ्कुचक्र-
मुच्छिद्य शीघ्रम्भवति स्वतंत्रः।
कुशाग्रबुद्धिः सुविचारदक्षो,
भेत्तुङ्कुचक्रं नृपतिः प्रयेते ।। १३ ।।

चतुर बुद्धि वाला व्यक्ति विपत्तियों के कुचक्र को तोड़कर शीघ्र ही स्वतंत्र हो जाता है। सुविचारक एवं कुशाग्र बुद्धि राजा शिवाजी भी औरंगजेब के कुचक्र को भेदने का प्रयत्न करने लगे।

महावलोऽसौ शिवराजसिंहो
रोगाभिभूतो भ्रमितुं न शक्तः।

शय्याधिरूढो दिवसं क्षपाञ्च,
कष्टेन नित्यं क्षपतीह वीरः।। १४ ।।

वह महाबली शिवराज सिंह रोग से पीड़ित है और चलने फिरने में भी असमर्थ हो गया है। वह वीर अपने बिस्तर पर पड़ा-पड़ा ही दिन और रात कष्ठ से बिता रहा है।

रोगाभिभूतशिवराजशरीरपीडा,
क्षीणङ्करोतिसततं हि शरीरसारम्।
क्षीणः शिवः स्वशयनं न जहाति रुग्णश्,
चैकम्पदं न चलितुं क्षमते कदाचित्।। १५ ।।

रोगग्रस्त महाराज शिवाजी की शरीर पीड़ा उनके शारीरिक बल को निरन्तर कम कर रही है। कमजोर शिवाजी अपने बिस्तर को नहीं छोड़ते और वे एक कदम भी चलने में समर्थ नहीं हैं।

रोगप्रकोपात्तु महाबलोऽपि,
जातोह्यशक्तः पुरुषार्थहीनः।
रोगस्य वृत्तं सुजनेषु चेत्थं,
दावाग्नितुल्यं प्रससार पुर्याम्।। १६ ।।

रोग के प्रकोप से महाबली शिवाजी अशक्त और पुरुषार्थहीन हो गये हैं। रोग का यह वृतान्त नगर के सुजनों में दावानल के समान शीघ्र ही फैल गया।

१६
विमुक्तिः

रोगाक्रान्तंशिवञ्श्रुत्वा, भूपोहर्षमुपागतः।
रामसिंहं समाहूय, प्रोवाच करुणं वचः।। १ ।।

शिवाजी को रोगग्रस्त सुनकर बादशाह औरंगजेब को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने रामसिंह को बुलाकर बड़े ही करुण वचन कहे।

खिद्यते मम चेतोऽत्र, श्रुत्वा रुग्णम्महाबलम्।
किङ्कर्त्तव्यम्मया वीर ! ब्रूहि खड्गभृतां वर।। २ ।।

हे राजन ! महाबली शिवा को रोगग्रस्त सुनकर मेरा चित्त दुःखी है। खड्गधारियों में श्रेष्ठ ! तुम बताओ कि मुझे क्या करना चाहिए।

अन्तः प्रसादमापन्नश्छलच्छद्मभरो नृपः।
व्याजेन खिद्यमानोऽसौ, बभूव करुणापरः।। ३ ।।

छल और छद्म से भरा हुआ वह राजा (औरंगजेब) अन्दर से प्रसन्न होता हुआ बाहर से खिन्न होता हुआ दयालु बन गया।

अन्तःप्रसन्नङ्करुणाविहीनम्,
राजन्यपुत्रः करुणम्वदन्तम्।
प्रोवाच राजन् ! करुणः शिवोऽसा,
वासन्नमृत्युः प्रतिभाति नूनम्।। ४ ।।

वह क्षत्रिय पुत्र (रामसिंह) करुणाविहीन, अन्तरात्मा से प्रसन्न होते हुए एवं करुण वचन कहते हुए औरंगजेब से बोला—हे राजन ! वह शिवाजी रोगी है और ऐसा लगता है कि उसकी मृत्यु निकट ही है।

सम्प्रेष्य वीरं नृपतेः सुपुत्र
मासाद्य भूपो भवनं स्वकीयम्।
फौलादखानं हवशीप्रधान-
माकार्यवृत्तन्तु विवेद सर्वम्।। ५ ।।

बादशाह औरंगजेब ने राजा जयसिंह के सुपुत्र रामसिंह को विदा करके और अपने कक्ष में आकर हवशियों के प्रधान फौलाद खाँ को बुलाकर सारी बात जानी।

तेनापि वृत्तङ्कथितन्तदेव,
प्रौढान्तु लेभे नृपतिः सुतुष्टिम्।
तुष्टेन तेनापि नृपेण वीर
उपेक्षितस्तत्रमुमूर्षमाणः ।। ६ ।।

उस फौलाद खाँ ने भी वही बात कही जो रामसिंह ने कही थी। उससे औरंगजेब को बड़ी सन्तुष्टि मिली। सन्तुष्ट हुए बादशाह औरंगजेब के द्वारा वह मरणासन्न वीर (शिवाजी) उपेक्षित हो गया।

एकदा रामसिंहेन, समागत्य हि मौगलः।
प्रार्थितः शिववीरस्य, भूत्वाप्रणिधिना स्वयम्।। ७ ।।

एक दिन शिवाजी का प्रतिनिधि होकर स्वयं रामसिंह ने आकर उस मुगल बादशाह औरंगजेब से प्रार्थना की।

शिवेन प्रार्थितः श्रीमाननुजानातु रोगिणम्।
प्रदद्यात्याचकेभ्योऽसौ, मिष्टान्नानि फलानि च।। ८ ।।

हे राजन ! शिवाजी ने आपसे प्रार्थना की है कि आप रोगी को आज्ञा दें कि वह याचकों को फल और मिठाइयाँ दान कर सके।

भूपेनाऽसावनुज्ञातोऽनुमतश्च सुधीवरः।
निदेशपालकान् वीरानादिदेशसुहृद्वरान्।। ९ ।।

औरंगजेब से आज्ञा एवं अनुमति प्राप्त किए हुए उस बुद्धिमान शिवाजी ने अपने आज्ञाकारी वीरों एवं सब मित्रों को आदेश दिया।

निर्धनेषु दरिद्रेषु, याचकेषु सुहृद्वराः।
यामिकेषु च भृत्येषु, खाद्यानि वितरन्तु वै।। १० ।।

हे मित्रो ! निर्धनों में दरिद्रों में,याचकों में, पहरेदारों में एवं सेवकों में खाद्य पदार्थ बाँटते रहो।

अतृप्तो न वसेत्कश्चिद्, भुञ्जीरन् याचका मुदा।
यथेच्छम्भोजनं स्वादु, मिष्ठान्नानि फलानि च।। ११ ।।

कोई भी व्यक्ति अतृप्त न रहे। याचक लोग पसन्नतापूर्वक इच्छानुसार स्वादिष्ट भोजन, मिठाई व फल खायें।

आज्ञप्ताः सेवकास्तेन, दुर्गाद् धृतविहंगिकाः ।
सिद्धान्नानि च मिष्टानि, फलान्यादाय निर्गताः ।। १२ ।।

शिवाजी से आज्ञा प्राप्त किये हुए, बहंगियों को धारण किये हुए आज्ञाकारी सेवक, पके हुए भोजन, मीठे फलादि लेकर किले से बाहर निकलने लगे।

शिवप्रेष्या निरातंका, दुर्गात्ते बहिरागताः ।
धृतास्ते यामिकैः क्रूरै र्निपुणं सुनिरीक्षिताः ।। १३ ।।

निर्भय बने शिवाजी के सेवक जैसे ही किले से बाहर निकले तो वे उन क्रूर पहरेदारों के द्वारा पकड़ लिये गये और भली प्रकार उनकी जाँच की गयी।

फलैः सुखाद्यैः परिपूरिताश्च,
स्कन्धीकृतास्ता गुरुवेणुशिक्याः ।
अहर्मुखे चैव निशामुखेऽपि
सर्वे वहन्तस्त्वलभन्त मोदम् ।। १४ ।।

प्रातःकाल और सायंकाल फलों और खाद्य पदार्थों से भरी हुई बड़े बाँस में लटकते हुए छींकों वाली बहंगियों को अपने कन्धों पर ढोते हुए सेवक आनन्द का अनुभव करते थे।

पक्वान्नमिष्ठान्नयुतानि तानि,
पात्राणि भृत्या निजकर्मसक्ताः ।
अंसैः स्वकीयैः परिधारयन्त
आजग्मुरानन्दभरा हि दुर्गात् ।। १५ ।।

अपने-अपने कर्त्तव्य में लगे हुए शिवाजी के सेवक पकवान और मिठाइयों से भरे उन पात्रों को अपने कन्धों से ढोते हुए किले से बाहर प्रसन्न होते हुए आ रहे थे।

सम्प्राप्य सुस्वादुयुतानपूपान्,
सिद्धान्नहैमीमधुमोदकाँश्च ।
पिण्डाँश्च कौष्माण्ड सुपायसानि,
खादन्ति दीना मुदिता यथेच्छम् ।। १६ ।।

स्वादिष्ट पूए, पके हुए खाद्य पदार्थ, बर्फी, मीठे लड्डू, पेड़े, पेठे की मिठाई एवं खीर प्राप्त करके प्रसन्न हुए दीन लोग इच्छानुसार खा रहे हैं।

भोज्यानि जंग्ध्वा मुदिता क्षुधार्ता,
आकण्ठतृप्ता धृतशीर्षहस्ताः ।

मौलाम्महेशङ्कुलमान्यदेवं,
स्वं स्वं ययाचुः शिवमंगलानि।। १७ ।।

भूखे व्यक्ति भोज्य पदार्थों को खाकर, आकण्ठ तृप्त हुए, प्रसन्न मन, सर पर हाथ जोड़े हुए, मौला से, महेश से एवं अपने-अपने कुल मान्य देवता से शिवाजी के कल्याण की याचना कर रहे थे।

स्वस्थो भवेद् वर्षशतं स जीव्यात्,
दुःखार्तिनाशः स्व गृहं प्रगम्यात्।
दृश्यात् स्वबन्धून् स्वरिपूँश्च जीयात्,
पुष्यात् सुखेनैव महामहीपः।। १८ ।।

(हे मौला ! हे भगवान !) यह शिवाजी जल्दी ही स्वस्थ हो, सौ वर्ष जीवे, दुःख और कष्टों से हीन अपने घर को जाये, अपने बन्धु-बान्धवों को देखे और अपने शत्रुओं को जीते, सुखपूर्वक हृष्ट-पुष्ट बना रहे।

जाताः प्रमत्ता उपभुज्य भोज्यं,
ते यामिका मोदभरा अनृत्यन्।
कर्मच्युतास्ते विमुखा नियोगात्,
निमील्य नेत्राणि विचेरुः तत्र।। १९ ।।

वे सभी पहरेदार यथेच्छ भोज्य पदार्थों को खा-खाकर मस्त हो गये और प्रसन्न हुए नाच-गान करने लगे। वे अपने-अपने कर्मों से विमुख हुए नेत्र बन्द करके (लापरवाह होकर) घूमने लगे।

पूर्वं स्व पुत्रं स्वकुलांङ्कुरन्तम्,
दुर्गात्सुदूरं नृपतिर्विधाय।
विश्वासपात्रं हितसाधकन्तम्
'हीरो'ऽभिधेयं सुहृदं ददर्श।। २० ।।

महाराज शिवाजी ने अपने कुल के अंकुर अपने पुत्र (शम्भाजी) को किले से दूर करके अपने हितचिन्तक विश्वासपात्र हीरो जी नाम वाले मित्र की ओर देखा।

सुधीवरोऽसौ शिवभावविज्ञः,
शिवस्य वेषम्परिधाय शीघ्रम्।
शिश्ये स्वयं यत्र शिवोऽधिशिश्ये,
साक्षाच्छिवोऽसौ सरुजो बभूव।। २१ ।।

अपने स्वामी शिवाजी के भावों को समझने वाला वह चतुर बुद्धि वाला 'हीरो जी' शीघ्र ही शिवाजी का वेष बनाकर उस स्थान पर लेट गया जहाँ शिवाजी लेटे हुए थे और वह साक्षात् रोगी शिवा ही बन गया।

स्वस्थं सुदिष्टं समयं विलोक्य,
स्व योजनां वै सुनियोजितान्ताम्।
प्रतीक्षमाणो नृपतिर्मुहूर्तम्,
प्रबुद्धवीरः सफलीचकार।। २२ ।।

शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा रत प्रबुद्ध वीर राजा शिवाजी ने उचित और सुन्दर समयं (मौका) देखकर अपनी पूर्व नियोजित सुन्दर योजना को सफल बना दिया।

भूत्वा विलीनो फलवाहिकायाम्,
दुर्गादशंको वहिराजगाम।
आसाद्य संकेतितभूमिभाग,
मश्वाधिरुढो यमुनामुपायात्।। २३ ।।

महाराज शिवाजी फलों की टोकरी (बहंगी का छींका) में छिपकर निशंक किले से बाहर आ गये और पूर्व निर्धारित संकेत स्थल पर पहुँच कर घोड़े पर सवार हुए यमुना तट पर आ पहुँचे।

सुधीवरास्ते परिचीय भूपम्,
संकेतमात्रेण शिवं प्रणम्य।
नौकाम्विशिष्टां सुनियोजितान्ता,
मानीय तीरञ्जगदुर्महीपम्।। २४ ।।

उन तीक्ष्ण बुद्धि वाले सेवकों (योग्य धीवरों) ने महाराज शिवाजी को पहचान कर और शिवाजी को संकेत मात्र से प्रणाम करके पहले से ही सुनियोजित विशिष्ट नाव को लेकर यमुना तट पर आये और राजा से बोले।

आरुह्य नावं तरसा भवन्त,
उत्तीर्य पुण्याम्यमुनाङ्गभीराम्।
आसाद्य तीरं त्वपरम्पवित्रङ्,
कर्तुं समर्थां उचितं हि यत्तत्।। २५ ।।

श्रीमान जी जल्दी से नाव पर सवार होकर, गहरी पवित्र यमुना को पार करके यमुना के दूसरे पवित्र किनारे पर पहुँचकर, आप वही करें जो आपको करना उचित है।

'हीरो' 'मदारी' समयं विलोक्य,
व्याजेन केनापि वहिः सुदुर्गात्।
निर्गत्य शीघ्रं सुनिकेतनंतत्,
तावाप्नुतांयत् ,मिलनं हि तेषाम्।। २६ ।।

हीरो जी और मदारी मेहतर दोनों ही मौका देखकर किसी बहाने से किले से बाहर निकलकर शीघ्र ही उस पूर्व निर्धारित स्थान पर पहुँचे जहाँ उनका मिलना तय था।

भोगीसमश्चरणघातविवृद्धमन्युः
दिल्लीश्वरः शिववरं निजवन्धनात्तु।
काराविमुक्तमवगम्य रदनच्छदौ स्वौ
दन्तैस्तदैव लुलुवे सरुषा कठोरैः।। २७ ।।

पादाघात से क्रुद्ध हुए सर्प के समान दिल्लीश्वर औरंगजेव शिवाजी को अपने बन्धन से मुक्त जानकर गुस्से से अपने कठोर दाँतों से अपने होंठ चबाने लगा।

मां वञ्चयित्वा मम यामिकाँश्च
वशङ्गतोऽसावभवत्विमुक्तः ।
द्वेषाग्निबाणैः क्षतविक्षतोऽसौ
दंश्याद्धि मान्तु प्रविवृद्ध मन्युः।। २८ ।।

वह शिवाजी मुझे और मेरे रक्षकों को धोखा देकर मेरे वश में आया हुआ भी मेरे बन्धम से मुक्त हो गया है। इस प्रकार द्वेषाग्नि के बाणों से घायल हुआ वह औरंगजेब रूपी सर्प, अधिक कुपित हुआ मुझे अवश्य ही डसेगा। ऐसा शिवाजी ने सोचा।

क्रोधात्स्वकीयौ रदनच्छदौ वै,
छिन्दन्सुतीव्रैर्दशनैः करालैः।
आतङ्कितोऽसौ शिवराजसिंहात्
पीताभदेहस्त्वभवन्महीपः ।। २९ ।।

क्रोध से अपने होंठों को कराल तेज दाँतों से चबाता हुआ बादशाह औरंगजेब शिवराज सिंह से आतंकित हुआ पीले रंग का हो गया।

प्रधानं यामिकङ्क्रूरम्फौलादाख्यं हि निर्दयम्।
आहूय कुत्सयन्भूपः पृष्टवान् क्रोधविह्वलः।। ३० ।।

क्रोध से व्याकुल बने बादशाह औरंगजेब ने पहरेदारों के प्रधान, क्रूर और निर्दय फौलाद खाँ को बुलाकर उसे बुरी तरह धिक्कारते हुए पूछा।

क्वगतः केनवा नीतः कुत्र लीनोऽभवच्छिवः।
वायुरूपधरः किंवा, निर्गतो बन्धनान्मम।। ३१ ।।

हे नीच ! वह शिवाजी कहाँ गया ? किसके द्वारा ले जाया गया ? वह कहाँ छिप गया ? क्या वह हवा बनकर मेरी कैद से भाग गया।

न किञ्चिच्छ्रोतुमिच्छामि, वाञ्छामि केवलंशिवम्।
नो चेत्त्वां नाशयिष्यामि, न लप्स्येऽहं शिवं यदि।। ३२ ।।

मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, मैं तो केवल शिवाजी को ही चाहता हूँ। नहीं तो मैं तुझे नष्ट कर दूँगा यदि मुझे शिवाजी नहीं मिला।

विच्छायवदनो भूपः प्रसन्नवदनः शिवः।
द्वावेवास्ताम्भूपौ, विषण्णो मुदितश्च तौ।। ३३ ।।

बादशाह औरंगजेब कान्तिहीन और शिवाजी प्रसन्न मुख, दोनों ही राजा उदास और प्रसन्न थे।

शम्भोः प्रसादादहमद्य मुक्तः
पुण्यां स्वकीयाञ्जननीमवाप्य।
द्रक्ष्ये हि शीघ्रञ्चरणौ स्व मातु-
र्खिन्नाननायाः सुतवत्सलायाः।। ३४ ।।

भगवान शंकर की कृपा से मुक्त हुआ आज मैं अपनी पवित्र विचारों वाली माता के पास पहुँचकर, पुत्र से प्रेम करने वाली, उदास मुख अपनी माता के चरणों के दर्शन करूँगा।

१७

परिब्राजकः

स्वातन्त्र्यभावोपगतो नृसिंहो,
नैजम्प्रदेशम्परिलब्धुकामः ।
त्यक्त्वा प्रदेशम्मुगलेश्वरस्य,
ततः प्रयाणाय मतिश्चकार ।। १ ।।

मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी, स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत अपनी मातृ-भूमि को शीघ्र प्राप्त करने की कामना वाले महाराज शिवाजी ने औरंगजेब के प्रदेश को त्यागकर वहाँ से चले जाने का विचार किया।

शीघ्रातिशीघ्रन्तु विहाय
राज्यमतः प्रयाणङ्करणीयमस्ति ।
दत्त्वा क्षणन्नैव मया विलम्बः,
प्राणान्तको मे भवितुं हि शक्तः ।। २ ।।

एक क्षण भी बेकार न करके जितनी जल्दी हो सके मुझे मुगल शासक का राज्य छोड़कर यहाँ से चला जाना है। देरी करना मेरे प्राणों का अन्त करने वाला हो सकता है।

भानोः सुपुत्री कथिता जनैर्या,
पुण्यप्रदां तां यमुनामवाप्य ।
संस्पृश्य नीरम्विमलम्पवित्रम्
श्रद्धानतोऽसौ प्रणनाम देवीम् ।। ३ ।।

जो मनुष्यों के द्वारा सूर्य-पुत्री कही गयी है, उस पुण्य प्रदान करने वाली यमुना पर पहुँचकर, और उसके पवित्र निर्मल जल का स्पर्श करके उस शिवाजी ने श्रद्धा से नत होकर यमुना देवी को प्रणाम किया।

पूर्वस्थितां सुघटितां तरिकां सुनद्याम्,
संदृश्य वीरनृपतिः परिचीय वीरान् ।
सार्धं स्व वीरतनुजैः सुभटैस्तपस्वी,
त्वारुह्य कंसनगरीम्मथुरामवाप ।। ४ ।।

वह तपस्वी वीर राजा (शिवाजी) पवित्र नदी यमुना में, भली प्रकार तैयार की गयी पहिले से ही खड़ी हुई नाव को देखकर और अपने वीरों को पहिचान कर अपने वीर सैनिकों के साथ नाव में चढ़कर कंस की नगरी मथुरा में पहुँचे।

सिंहोरुसत्वः शुभकर्मदक्षो
नैजानि वस्त्राणि विहाय शीघ्रम्।
धृत्वाहि वासांसि सुगैरिकानि,
जातस्तपस्वी जटिलो नरेन्द्रः।। ५ ।।

सिंह के समान पराक्रमी, शुभ कर्म करने में चतुर राजा शिवाजी शीघ्र ही अपने निजी वस्त्रों को त्यागकर और गेरुवे वस्त्र पहनकर जटाधारी तपस्वी बन गये।

भस्मांगरागेण विभूषितोऽसा-
वुग्रन्त्रिशूलं निशितन्दधानः।
जटासमूहेन सुशोभितो वै,
क्षिप्रं स जातः शिवकल्परूपः।। ६ ।।

भस्म के अंगराग से विभूषित, उग्र व तीक्ष्ण धार वाले त्रिशूल को धारण किये हुए शिवाजी, जटा समूह से सुशोभित शीघ्र ही शिवरूप धारी तपस्वी बन गये।

वीरस्वरूपम्परिहृत्य वीरो, जातो महात्मा धृतशान्तरूपः।
रुद्राक्षस्त्रग्शोभितकण्ठदेशो, देशाटनार्थी नगराच्चचाल।। ७ ।।

वीर शिवाजी अपने वीर स्वरूप को छोड़कर शान्त रूप धारण करने वाले महात्मा बन गये। रुद्राक्षों की माला से सुशोभित कण्ठ वाले, देशाटन करने के इच्छुक (शिवाजी) मथुरा नगरी से चल दिये।

आत्मानुरूपैर्जटिलैः सुवेषैः
शिष्यैः स्वकीयैरनुगम्यमानः।
त्रिपुण्ड्रधारी निगृहीतशूलस्,
तस्या नगर्या वहिराजगाम।। ८ ।।

अपने ही समान रूप वाले, जटाधारी, अच्छे वेष वाले, अपने शिष्यों से अनुगमन किये जाते हुए, त्रिपुण्ड लगाये हुए, हाथ में त्रिशूल लिये हुए, तपस्वी रूपधारी शिवाजी, उस मथुरा नगरी से बाहर आये।

यवनसैनिकवेषसुसज्जितास्तुरगपृष्ठसुशोभितविग्रहाः ।
निशितशस्त्रसुरक्षितजीवना, निजजनेश्वरजीवनरक्षकाः।। ९ ।।

यवन सैनिकों के वेष में सजे हुए, घोड़ों की पीठ पर सुशोभित देहवाले, तेज धार वाले शस्त्रों से सुरक्षित जीवन वाले, अपने राजा (शिवाजी) के प्राणों की रक्षा करने लगे।

प्राणान्स्वकीयाञ्जननायकस्य
सन्नद्धशस्त्राश्च सुरक्षमाणाः।
निरीक्षमाणाः सततम्महीपं,
वीराः प्रचेलुर्गतभीतिभावाः।। १० ।।

अपने प्राणों को एवं अपने जननायक (शिवाजी) के प्राणों की रक्षा करते हुए, हर समय महाराज शिवाजी पर निगाह रखते हुए निर्भय बने वीर उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

गोपालपादाङ्किकतभूमिलग्नान्,
रजःकणान्वीरवरस्तपस्वी।
श्रद्धाविनम्रो गतपापदृष्टि
भाले स्वकीये किल तान् दधार।। ११ ।।

भगवान गोपाल कृष्ण के चरणों में अंकित भूमि के रज कणों को, पवित्र दृष्टि वाले, श्रद्धा से विनम्र बने, वीरवर तपस्वी शिवाजी ने निश्चित ही अपने माथे पर धारण किया।

दिनकरकरहीनाचन्द्रपादैरहीना,
दिनपतितनयाऽसौ मोक्षदा कैरवाक्षी।
विमलसलिलवाहा धर्मसंरक्षकं तं
क्षपणककृतवेषं दुःखिताऽभूद्विलोक्य।। १२ ।।

सूर्य की किरणों से हीन और चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित कैरवों रूपी आँखों वाली, मोक्ष प्रदान करने वाली, पवित्र जल के प्रवाह वाली, सूर्य की पुत्री (यमुना) धर्म की रक्षा करने वाले राजा वीर शिवाजी को संन्यासी वेष में देखकर व्याकुल हो उठी।

कारुण्यभावोपगता दयार्द्रा,
तारल्यमाप प्रतनुप्रवाहा।
अद्यापि संस्मृत्य तु मौगलानाम्,
पापानि नीरं न सितं हि धत्ते।। १३ ।।

करुणा से परिपूर्ण, दयालु, बड़े प्रवाह वाली यमुना आज भी मुगलों के पापों को याद करके सफेद जल धारण नहीं कर पायी है।

सहिष्णुः सर्वकष्टानाञ्जन्मभूमेरुपासकः।
मुनिरूपधरो वीरो, मथुरामत्यजत्पुरीम्।। १४ ।।

सभी प्रकार के कष्टों को सहन करने वाले, अपनी जन्म भूमि के उपासक, मुनि का वेष धारण करने वाले वीर शिवाजी ने मथुरा नगरी छोड़ दी।

अतीत्य दुर्गमान्मार्गान् नदीनदसरोवरान्।
तीर्थस्थानानि सम्पश्यन् तीर्थराजमुपागतः।। १५ ।।

दुर्गम मार्गों को, नदी-नद एवं सरोवरों को पार करके तीर्थ स्थानों के दर्शन करते हुए शिवाजी तीर्थराज प्रयाग पहुँचे।

प्रणम्य तीर्थभूमिं वै, मस्तकेऽधारयद्रजः।
स्नात्वाऽसौ संगमे पुण्ये, लेभे द्विगुण पौरुषम्।। १६ ।।

वीर शिवाजी ने तीर्थ भूमि को प्रणाम करके उसकी पवित्र धूली को अपने मस्तक पर धारण किया और पवित्र संगम में स्नान करके दूने पौरुष को प्राप्त किया।

गतक्लमो निरांतको लब्धसाहसपौरुषः।
तीर्थधराम्प्रणत्याऽसौ, काशीं प्रति ययौ वली।। १७ ।।

थकान दूर हुई, निर्भय बना, साहस और पौरुष को प्राप्त किया हुआ वह बलशाली शिवा तीर्थ भूमि को प्रणाम करके काशी की ओर चल दिया।

पर्यटन् यत्र तत्राऽसौ, नगरीम्मोक्षदांशुभाम्।
सम्प्राप्य मोदमापन्नः प्रणौतिस्म महेश्वरम्।। १८ ।।

जहाँ-तहाँ भ्रमण करते हुए शिवाजी ने मोक्ष प्रदान करने वाली शुभ नगरी (काशी) पहुँच कर प्रसन्न होते हुए भगवान शंकर को प्रणाम किया।

विश्वनाथम्महादेवङ् गौरीशं त्रिपुरान्तकम्।
प्रणिपत्य ययाचेऽसौ, मातृभूमिनिषेवणम्।। १९ ।।

गौरी-पति, त्रिपुर का अन्त करने वाले, विश्वनाथ महादेव को प्रणाम करके उस शिवाजी ने मातृ-भूमि की सेवा करने की याचना की।

सुपूतानि त्वनेकानि, तीर्थानि विविधानि च।
सेवमानो महामानी, रायगढ़मुपागतः।। २० ।।

अनेक पवित्र स्थानों एवं विविध तीर्थों पर होता हुआ वह महामानी शिवा रायगढ़ जा पहुँचा।

दूराद्धि वीरो जननीं विभाव्य,
निपत्य भूमौ प्रणनाम भक्त्या।
द्वाभ्याङ् कराभ्याम्मृतिकाङ् गृहीत्वा,
श्रद्धान्वितस्ताम्मुमुदे सुपुत्रः।। २१ ।।

दूर से ही अपनी माता की सम्भावना करके वीर शिवाजी ने भूमि पर लेटकर भक्ति से उसे (जननी एवं जन्म-भूमि) प्रणाम किया और दोनों हाथों से मिट्टी लेकर श्रद्धा युक्त सुपुत्र शिवा गद्गद् हो गया।

तेनैव सार्धं सुभटा वयस्याः
स्वमातृ-भूमिं शिरसा प्रणेमुः।
रोमाञ्चितास्ते जलपूर्णनेत्राः
शेकुर्न वक्तुङ्किमपि प्रवीराः।। २२ ।।

उन शिवाजी महाराज के साथ ही उनके साथी वीर मित्रों ने भी अपनी जन्म-भूमि को सिर झुकाकर प्रणाम किया। आँसुओं से भरे नेत्रों वाले एवं रोमाञ्चित वे वीर वाणी से एक शब्द भी नहीं बोल सके।

मीनो यथा प्राप्य जलङ् गभीरम्,
मोदेत नित्यन्तु विहाय खेदम्।
ते कोङ्कणं प्राप्य तथैव मग्ना,
जाताः समुद्रे समुदं सुखस्य।। २३ ।।

जिस प्रकार मछली गहरे जल को प्राप्त कर अपनी खिन्नता को छोड़कर सदा प्रसन्न रहती है उसी प्रकार वे मातृ-भक्त वीर सैनिक भी अपने कोंकण प्रदेश में आकर सुख के सागर में मग्न हो गये।

षट्षष्टिः षोडशे वर्षे, शिववीरः समित्रकः।
'रायगढ़' इति ख्यातम्प्राप्तवान्सुगढं प्रियम्।। २४ ।।

सन् १६६६ ई० में शिवाजी अपने मित्रों सहित 'रायगढ़' नाम से विख्यात प्रिय दुर्ग पर पहुँचे।

१८

मातृत्वम्

धेनुर्यथा वत्सवियोगखिन्ना, शोकम्महान्तँल्लभते सदैव।
तथा जिजाऊ निज़पुत्रजातम् शोकम्प्रगाढं हृदये दधार।। १ ।।

जिस प्रकार अपने पुत्र के वियोग से दुःखी हुई गाय सदा महान् शोक प्राप्त करती है उसी प्रकार माता जिजाऊ (जीजाबाई) अपने पुत्र वियोग के प्रगाढ़ शोक को अपने हृदय में धारण किये हुए थी।

क्षणे-क्षणे सा शिवराज माता,
जाता कृशांगी सुतशोकदूना।
क्षीरं पिबन्ती मधुरं हि धेन्वा,
अयापयत्कष्टमयं स्वकालम्।। २ ।।

शिवाजी की वह माता जीजाबाई पुत्र शोक से दुःखी होती हुई क्षण-क्षण में कमजोर होती जा रही थी। वह गाय का मीठा दूध पीती हुई अपना समय कष्ट से व्यतीत कर रही थी।

बन्धाद्विमुक्तस्तनयो यदासीत्
माता 'जिजाऊ' तरला बभूव।
वियुक्तपुत्रा जननी तदैव,
ननाम देवीं तुलजाम्भवानीम्।। ३ ।।

माता जीजाबाई का पुत्र शिवाजी जैसे ही शत्रु के बन्धन से मुक्त हुआ तो माता तरल हो उठी (उसका मन भर आया)। उसी समय पुत्र से बिछुड़ी हुई माता ने देवी तुलजा भवानी को प्रणाम किया।

संस्पृश्य पादौ शुभदौ भवान्याः,
निमील्य नेत्रे जननी शिवस्य।
पुत्राय भद्रं सुतवत्सला सा
देवीम्भवानीं तुलजां ययाचे।। ४ ।।

शिवाजी की माता देवी भवानी के पवित्र कल्याणकारी चरणों का स्पर्श करके और अपने दोनों नेत्र बन्द करके अपने पुत्र के कल्याण के लिए देवी तुलजा भवानी से याचना की।

मातर्यशस्ते जगति प्रसिद्धम्,
सुताय सर्वं सहते सहर्षम्।

स्वयन्न जग्ध्वा तनयं स्वकीयम्,
पूतम्पयः पाययतीह नित्यम्।। ५ ।।

हे माता ! तेरा यश सारे संसार में प्रसिद्ध है। माता अपने पुत्र के लिए सब कुछ खुशी से सहन कर लेती है। वह स्वयं भूखी रहकर अपने पुत्र को पवित्र दूध सदा ही पिलाया करती है।

आयाति पुत्रो न कथम्मदीयस्
तस्याऽस्ति मार्गे त्ववरोधकः कः।
देवी भवानी सुतवत्सला सा कदा
मयि द्रोष्यति नैव जाने।। ६ ।।

मेरा पुत्र वापस क्यों नहीं आ रहा है! उसके मार्ग में कौन बाधक हो रहा है! सुतवत्सला वह देवी भवानी न जाने मुझ पर कब दया करेगी।

कदा मदीयः कुशली सुपुत्रो,
वेद्मि समायास्यति नैव चेत्थम्।
देवीप्रसादाद्रिपुमर्दनोऽसौ,
संबाध्य वैरीन स्वधरां भ्रियाद्धि।। ७ ।।

मेरा पुत्र सकुशल कब आयेगा मैं यह नहीं जानती और न जाने वह शत्रुओं का मर्दन करने वाला (शिवा) देवी की कृपा से शत्रुओं का विनाश करके अपनी भूमि का पालन करेगा।

अभद्रममपुत्रस्य जन्मभूमिसुरक्षिणः।
धर्मपरायणस्यैव, कर्तुं नार्हन्ति शत्रवः।। ८ ।।

अपनी जन्मभूमि की रक्षा करने वाले, धर्म परायण मेरे पुत्र का शत्रु कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

गो-विप्र मुनि-नारीणां, रक्षको विदुषां नृणाम्।
धर्मशास्त्रोपदेष्टृणां, स्वराज्यं भोक्ष्यते ध्रुवम्।। ९ ।।

गौ, ब्राह्मण, मुनिजन, नारी, विद्वान एवं धर्मशास्त्रों का उपदेश करने वाले व्यक्तियों की रक्षा करने वाला (मेरा पुत्र शिवा) अवश्य ही स्वराज्य भोगेगा।

मम पुत्रम्पराजेतुं समर्था नैव मौगलाः।
विधिनेदङ्कृतं सर्वं शिब्वा नैव समागतः।। १० ।।

मेरे पुत्र को पराजित करने में मुगल कभी भी समर्थ नहीं हैं। यह तो भाग्य ने ही सब किया है कि शिवा (शिब्बा माँ का प्यारा नाम) लौट नहीं सका है।

मान्या महीयसी माता, मलिना ममतामयी।
मनस्तो महिला मादम्मोचयन्ती व्याचारयत्।। ११ ।।

पुत्र से ममता रखने वाली, मलिन मुख, माननीया, महीयसी माता ने अपने मन से प्रसन्नता को दूर करते हुए सोचा।

कस्यां दशायान्तनयो मदीयः,
कुत्रास्ति जाने न कथम्भवेत्सः।
आकण्ठमग्ना जलधौ शुचः सा,
ददर्श धेनुं सहसा सवत्साम्।। १२ ।।

मेरा पुत्र (शिब्बा) न जाने कहाँ किस दशा में होगा ? जिस समय माता जीजाबाई इस प्रकार सोचती हुई शोक के सागर में डूबी हुई थी उसी समय उसने अचानक एक गाय को बछड़े सहित देखा।

आगत्य काक उपविश्य भित्ता-
वुच्चार्य शब्दं तरसोत्पपात।
सुगन्धवाहः सुखदो वनान्ताद्
घ्राणञ्जनन्याः सहसा चुचुम्ब।। १३ ।।

एक कौआ वहाँ आकर भीत पर बैठकर और शब्द करके जल्दी से वहाँ से उड़ गया। सुख देने वाले, अच्छी गन्ध को लिये हुए पवन ने अचानक आकर माता की घ्राण (नासिका) का चुम्बन किया। माता जीजाबाई ने मन को प्रसन्न कर देने वाली सुगन्ध का अनुभव किया।

विलोक्य माता शुभलक्षणानि,
हर्षातिरेकान्मुमुचे जलानि।
रम्या वनश्रीः सुखदा मनोज्ञा,
पयस्विनीं ताञ्जननीञ्चकार।। १४ ।।

उन शुभ लक्षणों को देखकर माता की आँखों में खुशी के आँसू आ गये। मन को अच्छी लगने वाली, रम्य, सुख देने वाली वन की शोभा ने माता को पुत्र वत्सला बना दिया।

कतिपयकलकण्ठैः कोकिलैः कृष्णवर्णैः,
कुटिलकरकठोरैः कीचकैः कुञ्चितैश्च।
कपिकुलकृतलासैः कृष्ण काकैः कठोरैः,
दिनकरकरकम्रा सर्वथाऽऽसीद् वनश्रीः।। १५ ।।

कुछ सुन्दर कण्ठ वाली, काले रंग वाली कोयलों से, दुष्ट व्यक्ति के हाथ के समान कठोर, टेढ़े-मेढ़े बाँसों से, वानरों के समूह से की हुई क्रीड़ाओं से, कटु ध्वनि करने वाले काले-काले कौओं से एवं छिपते हुए सूर्य की किरणों से सजी हुई वन की शोभा सभी प्रकार से सुन्दर थी।

लघुललितलताभि र्लालसालालिताभिः,
ललितलषितलासै र्लालसैर्लाषुकैश्च।
लपितलपनलीनैर्लोललासानभिज्ञैः
हरित-हरित कीरैः शोभिताऽऽसीद् वनश्रीः ।। १६ ।।

बड़े मनोयोग से पालित छोटी-छोटी सुन्दर लताओं से, सुन्दर इच्छित लीला करने वाले, सुन्दर उछल कूद करने वाले, कहे हुए शब्दों के उच्चारण करने में लीन, चंचल भावों से अनभिज्ञ, हरे-हरे रंग वाले सुन्दर तोतों से वन की शोभा सभी प्रकार से सुन्दर बनी हुई थी।

प्रतिपदरमणीयैः, पादपैः पुष्पपूर्णैः
परिमितपरिहासैः, पाटलैः पीतवर्णैः।
परिमलपरिसर्पैरुत्पतद्भिः पतंगैः
पथिकजनसनाथा सर्वथाऽऽसीद् वनश्रीः ।। १७ ।।

कदम-कदम पर, सुन्दर फूलों से लदे वृक्षों से, पीले और गुलाबी रंग के खिले हुए गुलाबों से, सुगन्ध को इधर-उधर बिखेरते हुए, उड़ते हुए पक्षियों से एवं यात्रियों के समूहों से भरी हुयी वन की शोभा सभी प्रकार से सुन्दर बनी हुयी थी।

भद्राणि चिह्नानि विलोक्य माता,
रोमाञ्चिताऽभूदवरुद्धकण्ठा ।
द्रक्ष्ये प्रसन्नं सुचिराद्वियुक्तम्
पुत्रम्मदीयं दृढनिश्चयो मे ।। १८ ।।

माता जीजाबाई उन शुभ संकेतों (सगुनों) को देखकर रोमाञ्चित हो उठी और उसका गला भर आया। अब मैं बहुत समय से बिछुड़े अपने पुत्र को प्रसन्न मुख देखूँगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

विचारमग्ना जननी यदाऽऽसी-
दागत्य कश्चिद्युवकस्तदैव।
उवाच मात! जयतां भवानी,
भक्तो भवान्याः कुशली शिवाजिः ।। १९ ।।

जिस समय माता इस प्रकार विचारों में डूबी हुई थी कि उसी समय किसी युवक ने आकर कहा कि हे माता ! देवी भवानी की जय हो, देवी के भक्त शिवाजी कुशलपूर्वक हैं।

द्रष्टुं भवत्याश्चरणौ सुपूज्यौ,
प्रतीक्षतेऽसौ जटिलो महात्मा।
प्रतापशाली घटितांगदेहः,
सन्देशवाहः मृदुवाक्यभाषी।। २० ।।

इस सन्देश को लाने वाला, शुभ वाक्य का कहने वाला, सुगठित अंगों वाला प्रतापशाली, वह जटाधारी महात्मा आपके पूज्य चरणों के दर्शनों के लिए प्रतीक्षा कर रहा है।

श्रुत्वेदं हर्षदं वाक्यम्माता वृद्धा महीयसी।
पारावारे सुमोदस्य जाता मग्ना सुवत्सला।। २१ ।।

प्रसन्नता भरी इस बात को सुनकर महीयसी वृद्धा माँ (जीजाबाई) पुत्र से प्रेम करने वाली प्रसन्नता के सागर में डूब गयी।

तत्रागत्य सुतस्तस्या, स्तदैव प्राणमद्वली।
माता तनुजमालोक्य वक्षसि तमगोपयत्।। २२ ।।

उसी समय उस (जीजाबाई) के बलशाली पुत्र ने आकर उसे प्रणाम किया और माता ने पुत्र को देखकर अपनी छाती से लगा लिया।

माता समक्षं समुपस्थितंतम्
रोमाञ्चिताऽभूत्तनयं विलोक्य।
विस्मृत्य देवी निजदेह भाव
मश्रूणि हर्षस्य मुमोच राज्ञी।। २३ ।।

माता जीजाबाई अपने सामने उपस्थित उस पुत्र को देखकर रोमाञ्चित हो उठी, और महारानी देवी (जीजाबाई) अपने शरीर की सुध-बुध भुलाकर खुशी से रो पड़ी।

संस्पृश्य गात्राणि सुतस्य माता,
वक्तुं न शेके त्ववरुद्धकण्ठा।
देवीम्भवानीङ्कुलदेवतां स्वाम्,
निमील्य नेत्रे तुलजां ववन्दे।। २४ ।।

अवरुद्ध कण्ठ वाली माता पुत्र के अंगों को स्पर्श करके ही रह गयी, कुछ बोल न सकी और नेत्र बन्द कर अपने कुल की देवी तुलजा भवानी की वन्दना करने लगी।

मातः ! कृपा ते न हि वर्णनीया,
यस्मै कृपा ते सुजनः सधन्यः।
खड्गोऽपि तस्मै दृढ़निश्चयो मे,
तृणायते भक्तवराय देवि।। २५ ।।

हे माता ! तेरी कृपा का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस पर तेरी कृपा हो जाय वह मनुष्य धन्य है। यह मेरा पक्का विश्वास है कि हे देवि। तेरे उस भक्त के लिए तलवार भी तिनके का काम करती है।

नमोऽस्तु ते देवि ! विशालमूर्ते !
कृपामयी त्वं निजभक्तिरक्ते।
वाञ्छामि मातः ! सुकृपान्त्वदीयाम्
पुत्रो मदीयो जयतात् स्वशत्रून्।। २६ ।।

हे विशाल मूर्ति वाली देवी आप को नमस्कार है। अपनी भक्ति में लगे हुए जन पर तुम सदा कृपा करने वाली हो। हे माता ! मैं तेरी कृपा चाहती हूँ। मेरा पुत्र सदा ही अपने शत्रुओं को जीतता रहे।

१९

राज्याभिषेकः

आमोदमग्नाः सुजनाः सुशीला
व्यस्ता हि सर्वे स्वनियोगयुक्ताः।
कार्येषुलीना विरता सुखेभ्यो
भृत्या न ह्यापुः क्षणमेकमेव।। १ ।।

प्रसन्नता से भरे हुए सुशील जन अपने-अपने कार्यों में व्यस्त थे। विश्राम करने के सुखों से दूर कार्यों में लगे हुए सेवकों को एक क्षण का भी अवकाश नहीं था। (सभी राज्याभिषेक की तैयारी में जुटे हुए थे।)

बाला रमण्यस्सुरयोषितोवै, दिव्यै सुकेशैर्वरभूषिता याः।
वस्त्रैरमूल्यैश्च सुसज्जितास्ताः गायन्ति गीतानि मनोहराणि।। २ ।।

देव वनिताओं के समान रमणी बालाएँ जो दिव्य केशों से सजी हुई थीं वे अमूल्य वस्त्रों द्वारा सजी हुई मनोहर गीत गा रही थीं।

तासां सुकण्ठोद्गतगीतशब्दा,
माधुर्यपूर्णा नवरागसिक्ताः।
कार्येषुलीनाँश्छंमिकान् रसज्ञा
नुत्प्रेरयन्ति द्विगुणश्रमाय।। ३ ।।

मनोहर गीत गाने वाली उन रमणियों के कल कण्ठ से निकले हुए, गीतों के, मधुरता से भरे हुए और नये-नये रागों से युक्त शब्द, अभिषेक की तैयारी में जुटे हुए कार्यलीन रसज्ञ श्रमिकों को दुगने उत्साह से कार्य करने के लिए प्रेरित करते थे।

मुग्धा गृहाणि प्रविशोधमानाः
स्वच्छानि रम्याणि विधातुकामाः।
हस्तोच्छ्रितैर्मृत्कणकैः कदाचिद्,
वीरान् रसज्ञान् ननु हासयन्ति।। ४ ।।

वे मुग्धा बालाएँ अपने-अपने घरों को स्वच्छ और सुन्दर बनाने की कामना वाली, विशेष रूप से घरों को लीपती हुई, अपने हाथों में लगे हुए मिट्टी के कणों से रसिक वीर जनों को हँसा रही थी।

तन्व्यस्तरुण्यस्स्तनभारनम्राः
काश्चिद् रमण्यो घठितांगदेहाः।
श्यामाश्च मुग्धा रसिकान्नरान्वै;
हासैस्वभावैश्च विमोहयन्ति।। ५ ।।

स्तनों के भार से झुकी हुई, सुते हुए शरीर वाली युवतियाँ कुछ सुगठित शरीर वाली सुन्दर बालाएँ और कहीं भोली-भाली षोडशी रमणियाँ अपने हाव-भावों एवं हास-परिहासों से रसिक जनों को भाव-विभोर कर रही थीं।

गेहानि वर्णैर्विविधैर्विचित्रैः पुष्पैर्लताभिस्सुमनोहराभिः।
मौला युवत्यो युवकाः प्रवीरा, दीपप्रभाभिः परिभूषयन्ति।। ६ ।।

महाराष्ट्र के वीर युवक व युवतियाँ, अपने-अपने घरों को, तरह-तरह के रंगों से, रंग-बिरंगे फूलों से, सुन्दर लगने वाली मनोहर लताओं से तथा दीपों के प्रकाश से, बड़े ही मनोयोग से सजा रहे थे।

व्यस्ता हि चासन्निजकैर्वयस्यैः
सार्धं स्वकीयं नगरं विशालम्।
भव्यं प्रदिव्यं सुमनोहरञ्च,
सर्वप्रकारेण शुभं विधातुम्।। ७ ।।

महाराष्ट्र के निवासी अपने-अपने मित्रों के साथ अपने उस विशाल नगर को भव्य, अद्भुत और मनोहर एवं सभी प्रकार से शुभ बनाने के लिए व्यस्त दीख रहे थे।

दूरागतेभ्यो जनसेवकेभ्यो, वारिव्यस्था सुमनोहरासीत्।
प्रपानियुक्ता जलहारकास्ते, कूपात्सुपेयञ्जलमाहरन्ति।। ८ ।।

राज्याभिषेक के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए दूर से आये हुए जन सेवकों के लिए जल की बड़ी ही सुन्दर व्यवस्था की गयी थी। प्याऊ (पौशाला) पर नियुक्त किये हुए जल भर कर लाने वाले वे व्यक्ति कुएँ से पीने योग्य जल भर-भर कर ला रहे थे।

गोस्थानकानि प्रतिमागृहाणि,
सद्मानि रम्याणि मनोहराणि।
माल्यैः सुपुष्पैर्वरभूषितानि,
तिष्ठन्ति राज्ये नव काननानि।। ९ ।।

उस समय महाराष्ट्र राज्य में गौशालाएँ, देव मन्दिर, सभी प्रकार से अच्छे लगने वाले सुन्दर घर, मालाओं और फूलों से भली प्रकार सजाये हुए थे और राज्य के चारों तरफ सुन्दर लगने वाले उपवन सुशोभित हो रहे थे।

शाक्तीक-याष्टीक-धनुर्धरा वै,
ये खड्गहस्ता मृगराजतुल्याः।
वन्यान्निरीहान्न कदापि जीवा
न्निघ्नन्ति ते नैव नरान्निरीहान्।। १० ।।

शक्ति, लाठी व धनुष को धारण करने वाले तथा सदैव तलवार को हाथों में रखने वाले, सिंह के समान पराक्रमी महाराष्ट्र के वीर व्यक्ति निरीह वन्य पशुओं को कभी नहीं मारते तथा निरपराध, निरीह मानवों की तो कभी हत्या करते ही नहीं।

शिष्टा बलिष्ठा निजकर्मनिष्ठा,
सन्मार्गदिष्टाः पुरुषा विशिष्टाः।
लब्धप्रतिष्ठा न कदाप्यशिष्टा,
मोदं वहन्ते प्रिय मातुरंके।। ११ ।।

अपनी प्रिय जन्मभूमि की गोद में सुख से रहने वाले सभी शिष्ट, बलशाली, अपने-अपने कर्म में निष्ठा रखने वाले, सन्मार्ग पर चलने वाले, सम्मान प्राप्त करने वाले कभी भी अशिष्ट न होने वाले एवं महाराष्ट्र के विशिष्ट पुरुष भी आनन्द का जीवन विता रहे थे।

पीत्वा सुपेयम्मधुरं सुतोयं-
तुष्टा नरा मोदभरास्तृषार्ताः।
जग्ध्वा सुखाद्यं रुचिरं क्षुधार्ताः
माद्यन्ति नित्यं शिवराजराज्ये।। १२ ।।

महाराज शिवाजी के राज्य में सुपेय मधुर जल को पीकर सन्तुष्ट हुए एवं प्रसन्न हुए मनुष्य आनन्दित हैं और भूखे व्यक्ति सुस्वादु अन्न खाकर नित्य ही खुश रहते हैं।

घण्टापथास्तत्र विभक्तमार्गा,
सिक्तास्सुनीरैर्दृतिनिःसृतैस्तु।
शुभ्रीकृता धौतसुधारसेन्
कुर्वन्ति दृष्टिं स्ववशे जनानाम्।। १३ ।।

भली प्रकार विभाजित किये हुए मार्ग वाले राजपथ, मसकों से छिड़के हुए जलों से गीले थे और कलई बिखेरे जाने के कारण सफेद बने हुए वे राजपथ मनुष्यों की दृष्टियों को बलपूर्वक अपनी ओर खींच रहे थे।

संशोभिताः शुद्धपलाश-पत्रैः.
रम्भादलैश्चित्रविचित्र-पुष्पैः।

माल्यैः सुदिव्यैः खगकण्ठरावै
र्मार्गाः प्रथन्ते शिवराजकीर्तिम्।। १४ ।।

शुद्ध पलाश के पत्तों से, केलों के खम्भों से, रंग-बिरंगे विविध प्रकार के फूलों से, विशेष प्रकार से गुथी हुई सुन्दर मालाओं से, पक्षियों के मधुर कूजन से सुशोभित मार्ग शिवाजी के यश की वृद्धि को प्रकट कर रहे थे।

वाता ववुस्तत्र मनोहराश्च,
काष्ठा बभूवुः सुखदाः समन्तात्।
आगत्य मेघा गगने विरेजु
स्तत्याज तापं तरणिस्स्वकीयम्।। १५ ।।

उस समय सुख देने वाली मनोहर वायु चल रही थी। चारों ओर सुख फैलाने वाली सभी दिशाएँ मनोहर हो गयी थीं। चारों ओर से आकर बादल भी आकाश में छा गये थे और सूर्य भी अपनी उष्णता त्याग कर सुखद बन गया था।

रागी, विरागी, भवनानुरागी,
त्यागी, तपस्वी, ललनानुरागी।
देशानुरागी कुलमानरागी,
देवीं भवानीं तुलजां भजन्ते।। १६ ।।

शिवाजी के राज्य में, संसार में मोह रखने वाला, विरक्ति का जीवन-जीने वाला, बड़े-बड़े महलों में अनुरक्त रहने वाला, सब कुछ त्याग देने वाला, तपस्या में रत रहने वाला, विलासी जीवन जीने वाला, देश से प्रेम करने वाला, अपने कुल की मान-मर्यादा को मानने वाला कोई भी व्यक्ति क्यों न हो, सभी देवी भवानी तुलजा की उपासना करते थे।

देवी मृडानी तुलजा भवानी,
राज्यम्महाराष्ट्रजनेश्वरस्य।
संरक्षितुङ्खड्गधरा शिवा वै,
सान्निध्यमाप्नोतु शिवस्य नित्यम्।। १७ ।।

सदा कल्याण करने वाली, देवी मृडानी, तुलजा भवानी हाथ में खड्ग लिये हुए महाराष्ट्र राज्य के स्वामी शिवाजी के राज्य की रक्षा के लिए सदा ही शिवाजी के पास बनी रहे।

कर्मकाण्डी महाज्ञानी, गागाभट्टो महोदयः।
वेद-शास्त्र-पुराणानां, पण्डितो धर्मकर्मवित्।। १८ ।।

दूरदर्शी त्रिकालज्ञो, गुणवानविषण्णधीः।
महाराष्ट्रमलञ्चक्रे, स्वकीयैश्चरणैश्शुभैः।। १९ ।।

कर्म काण्ड के पण्डित, महाज्ञानी, वेद शास्त्र एवं पुराणों के ज्ञाता धर्म-कर्म की महत्ता को समझने वाले, दूरदर्शी, तीनों (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) कालों की जानकारी रखने वाले, स्वस्थ बुद्धि वाले, सभी गुणों से सम्पन्न, पूज्य गागा भट्ट महोदय ने अपने पवित्र चरणों से महाराष्ट्र की भूमि को सुशोभित किया। (राज्याभिषेक के सभी कार्यों को विधिवत पूरा कराने के लिए गागाभट्ट महोदय महाराष्ट्र आ पहुँचे।)

गागाभट्टेन चागत्य, कृता शुद्धा हि राष्ट्रभूः।
इति श्रुत्वा गुरुम्मान्यं, प्रतीयाय शिवस्स्वयम्।। २० ।।

पण्डित गागाभट्ट महोदय ने आकर महाराष्ट्र की भूमि को पवित्र बना दिया है। ऐसा सुनकर पूज्य गुरु के सम्मान के लिए शिवाजी स्वयं उनके पास पहुँचे।

विज्ञं गुरूम्प्रणत्याऽसौ, 'शिवाजी' नतमस्तकः।
ससम्मानं समानीय, सर्वन्तस्मै समर्पयत्।। २१ ।।

अपना मस्तक झुकाए हुए उस शिवाजी ने उन विद्वान गुरु को प्रणाम करके, बड़े सम्मान के साथ महल में लाकर अपना सब कुछ उन्हें समर्पित कर दिया।

'स्वस्त्यस्तु गुरुणाऽदिष्टस्तत्सर्वङ्कृतवान्मुदा।
भद्राय यच्च कर्त्तव्यं, नृपेण भूतिमिच्छता।। २२ ।।

'तुम्हारा कल्याण हो' इस प्रकार कहे हुए, पूज्य गुरु से आदेश प्राप्त किये हुए शिवाजी ने वे सभी कार्य बड़ी प्रसन्नता से पूरे किये, जो ऐश्वर्य चाहने वाले राजा के द्वारा अपने कल्याण के लिए किये जाने चाहिएँ।

शास्त्रोक्तविधिना पूर्णं, भवेद्राज्याभिषेचनम्।
सम्पादिताः क्रियाः सर्वाः, शिवेन गुरुणा समम्।। २३ ।।

राज्याभिषेक की सभी क्रियाएँ शास्त्रोक्त विधि से ही पूर्ण हों अतः शिवाजी ने उन सभी क्रियाओं को गुरु के साथ-साथ पूरा किया।

संस्कृतो यज्ञसूत्रेण, प्रथमं राष्ट्रनायकः।
ततो जातन्तुलादानम्प्रदत्तं निर्धनेषु तत्।। २४ ।।

सर्वप्रथम यज्ञोपवीत संस्कार से उस राष्ट्रनायक को शुद्ध किया गया फिर तुलादान हुआ जो उपस्थित निर्धनों में बाँट दिया गया।

विशालो जनसम्मर्द उदन्वानागतो ध्रुवम्।
तरंगा मानवाश्चासन् 'रायगढ़' हि वारिधिः।। २५ ।।

रायगढ़ में इतना विशाल जन समूह एकत्र हुआ मानो समुद्र ही उमड़ पड़ा हो। 'रायगढ़' रूपी सागर में मनुष्य लहरें बने हुए थे।

अहर्मुखे समुत्थाय; स्नात्वा शुद्धमानसः।
सदारतनयो भूपः कुलदेवीमपूपुजत्।। २६ ।।

प्रातःकाल शीघ्र ही उठकर, स्नान करके शुद्ध मन वाले राजा (शिवाजी) ने अपनी पत्नी व पुत्र सहित अपने कुल की देवी (तुलजा भवानी) की पूजा की।

"विधेहि द्विषतां नाशं, विधेहि बलमुच्चकैः।
विधेहि देवि कल्याणं, विधेहि परमां श्रियम्।। २७ ।।

हे देवी ! मेरे शत्रुओं का नाश करो, मुझे उत्तम बल दो। मेरा कल्याण करो और मुझे श्रेष्ठ लक्ष्मी (श्री) प्रदान करो।

आसीत्सभास्थलन्तत्र निर्मितं शिल्पकारकैः।
सज्जितं सर्वथा स्वस्थैः मंचैः पुष्पैः सुवस्त्रकैः।। २८ ।।

रायगढ़ में शिल्पकारों के द्वारा एक सभा स्थल का निर्माण किया गया था जो सभी तरह से स्वस्थ, मंचों, पुष्पों एवं अच्छे वस्त्रों से सजा हुआ था।

आसन्दिकाधिष्ठितपौरमुख्यै,
र्मान्यैर्महीपैः रणशूरवीरैः।
राज्याश्रितैर्मन्त्रिगणैः सुभृत्यैः
संशोभितासीत्परिषद् विशिष्टा।। २९ ।।

कुर्सियों पर विराजमान नगर के गण्यमान व्यक्तियों से, सम्मानित राजाओं से, शूरवीर योद्धाओं से, राज्य के आश्रित मन्त्रियों एवं सेवकों से वह विशेष परिषद् सजी हुई थी।

विप्रैस्सुविज्ञैर्मुनिभिः परशस्यै-
र्लक्ष्मीधरैर्मातृधरानुरक्तैः।
पूज्यैर्नमस्यैः रसनाग्रवेदैस्
संशोभितासीत्परिषद् विशिष्टा।। ३० ।।

वह विशेष परिषद् विद्वान ब्राह्मणों से, श्रेष्ठ मुनियों से, धनवान सेठों से, मातृ-भूमि से प्रेम करने वाले देश भक्तों से, पूज्य एवं नमस्कार करने योग्य वेदों को कण्ठस्थ किये हुए विद्वानों से सुशोभित हो रही थी।

कुथैर्महार्घैरूपवर्हयुक्तैश्
चित्रैर्विचित्रैर्मृदुपुष्पमाल्यैः।

स्वच्छैर्वितानैः परिमण्डिता सा,
संशोभितासीत्परिषद् विशिष्टा ।। ३१ ।।

तकियों से सजे हुए बड़े कीमती कालीनों से, चित्र विचित्र फूलों की सुन्दर मालाओं से, सांफ-स्वच्छ शामियानों से सजी हुई वह विशेष परिषद शोभायमान हो रही थी।

देवाङ्गनाभिः सुरवृन्दमुख्याः,
सार्धं समागत्य खमध्यतिष्ठन्।
दिव्यानि पुष्पाणि करेषु धृत्वा,
प्रैक्षन्त कालं त्वभिषेचनस्य ।। ३२ ।।

अपनी-अपनी अंगनाओं के साथ आकर देवताओं के समूह के समूह आकाश में ठहर गये और अपने हाथों में दिव्य पुष्प लेकर अभिषेक के समय की प्रतीक्षा करने लगे।

'जीजा' सुपुत्रा जननी शिवस्य,
देवीं भवानीम्मनसा स्मरन्ती।
भद्रं सुकीर्तिं सुख-सम्पदश्च,
पुत्राय देवीं तुलजां ययाचे ।। ३३ ।।

मन से देवी भवानी को स्मरण करती हुई, योग्य पुत्र वाली, शिवाजी की माता जीजाबाई ने, अपने पुत्र के लिए देवी तुलजा से कल्याण, यश एवं सुख-सम्पत्ति की याचना की।

अम्बा भवानी भवतात्प्रसन्ना,
जीव्यात्मदीयस्तनयो जगत्याम्।
भूयाच्चिरायुः शरदः शतं वै,
शत्रून्स्वकीयान्समरेषु जीयात् ।। ३४ ।।

अम्बा भवानी प्रसन्न हों और ईश्वर करे मेरा पुत्र संसार में जीता रहे, यह चिरायु हो सौ वर्ष की आयु प्राप्त करे और युद्धों में अपने शत्रुओं को सदा जीतता रहे।

सपत्नीकस्सपुत्रश्च, मानवेन्द्रो महाबली।
गुरुणाऽसावनुज्ञातो रराज स्नान-पट्टके ।। ३५ ।।

वह मानवेन्द्र (शिवाजी) महाबली अपनी पत्नी व पुत्र के साथ, गुरु से आज्ञा प्राप्त किया हुआ स्नान पट्ट पर सुशोभित हुआ।

चतुर्दिक्षु समुद्भूतो जयघोषो महोच्चकैः।
देवलोकङ्गतो नादो, भित्वा गगनमण्डलम् ।। ३६ ।।

चारों ओर से जय-जय का महान् नारा लगने लगा। उस महानाद का शब्द गगन मण्डल को भेद कर स्वर्ग लोक तक जा पहुँचा।

जनको जनराजस्य, देवरूपधरो दिवि।
श्रुत्वा जयनिनादन्तम्मुमुदे हर्षनिर्भरः।। ३७ ।।

महाराज शिवाजी के पिता, जो स्वर्ग में देवरूप में रह रहे थे, उस जय घोष को सुनकर. हर्ष से आनन्दित हो उठे।

गाङ्गम्पवित्रं सलिलं नदीनाम्,
मंत्राभिपूतान्युदधेर्जलानि।
तीर्थाहृतानि प्रति पावनानि
भाण्डेषु चासन् परि संस्थितानि।। ३८ ।।

गंगा का एवं अन्य नदियों के पवित्र जल मंत्रों से पवित्र किये हुए समुद्रों के जल तथा तीर्थों से लाये हुए पवित्र जल वहाँ घड़ों में रखे हुए थे।

अष्टौ घटा हि तत्रासन्, विविधधातुनिर्मिताः।
पूर्णाः पुण्योदकैः पूतैः, द्योतमाना स्वकान्तिभिः।। ३९ ।।

अलग-अलग धातुओं के बने, अपनी कान्तियों से चमकते हुए, पवित्र जलों से परिपूर्ण आठ घड़े वहाँ रखे हुए थे।

अष्टौ प्रधाना जलकुम्भहस्ता,
आज्ञां गुरोर्भट्टमहोदयस्य।
प्रतीक्षमाणा धृतधौतवस्त्रास्,
तस्थुस्समीपे जननायकस्य।। ४० ।।

जल-कलश हाथों में लिए हुए, शुद्ध सफेद वस्त्र धारण किये हुए, आठ प्रतिष्ठित प्रधान व्यक्ति गुरु गागाभट्ट की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए जननायक (शिवाजी) के पास खड़े हो गये।

मंत्राभिपूतैः सलिलै र्विशुद्धैस्
संशुद्धगात्रो धृतपूतवस्त्रः।
उत्थाय सर्वाञ्शिरसा प्रणम्य,
मातुस्सकाशन्त्वरसा जगाम।। ४१ ।।

मंत्रों से पवित्र किये हुए शुद्ध जलों से शुद्ध शरीर वाले शुद्ध वस्त्रों को धारण किये हुए

महाराज शिवाजी ने स्नान से उठकर सबका अभिवादन किया, और जल्दी से माता (जीजाऊ) के पास पहुँचे।

पादौ जनन्याः शिरसा प्रणम्य,
क्लिन्नावकार्षीन्निजकेशतोयैः।
माता स्वपुत्रं विनतं विलोक्य,
हर्षाश्रुबिन्दून्नितराम्मुमोच ।।४२ ।।

महाराज शिवाजी ने सर झुकाकर माता को प्रणाम करके उसके दोनों चरणों को अपने केशों से टपकते हुए जल कणों से भिगो दिया। माता (जीजाबाई) अपने विनत पुत्र को देखकर प्रसन्नता के आँसुओं से भर उठी।

मातस्त्वदीयस्तनयो विनम्रः,
पीत्वा पयस्ते बलवान्सुपुष्टः।
जातं हि यद्यच्च भविष्यतीह,
तत्ते दयायाः सुफलं विशुद्धम्।।४३ ।।

हे माता ! तेरा यह विनम्र पुत्र तेरा ही दूध पीकर बलवान और पुष्टगात्र वाला हुआ है। अब तक जो कुछ भी हुआ है और आगे होगा वह सब तेरी ही दया का पवित्र परिणाम है।

कौशेयवस्त्रावृतदेहयष्टि-
र्माणिक्य मुक्ताजटितेप्रकोशे।
आसीद् भवानीं परिधारयन्स,
वीरो हि मन्ये शिवविग्रहस्थः।।४४ ।।

वे शिवाजी महाराज रेशमी वस्त्रों से अपने शरीर को ढके हुए (रेशमी वस्त्र पहने हुए) माणिक्य और मुक्ता जड़ी हुई म्यान में रखी 'भवानी' नाम की तलवार धारण किए हुए थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानों वीर रस ही शिवाजी के रूप में आ विराजा हो।

ग्रैवेयकैर्भूषितकण्ठदेशो रत्नप्रभाभासितबाहुमूलः।
हैमं दृढिष्ठं वलयं दधान-उर्जस्वलः राजसभां प्रपेदे।।४५ ।।

बहुमूल्य हारों से सुशोभित कण्ठ वाले, रत्नों की कान्ति से प्रभासित भुजदण्डों वाले, सोने से बने मजबूत वलय को धारण करने वाले, महान शक्तिशाली शिवाजी राजसभा में पधारे।

उष्णीषधारी जटिलः प्रतापी,
सत्साहसी कूर्चमुखो नरेन्द्रः।

मन्ये प्रचण्डस्तरणिः समेत्य,
ऋक्षान्नरेन्द्रान्मलिनीचकार।। ४६ ।।

जटाधारी, प्रतापी, सत्साहसी, सुन्दर दाढ़ी वाले, सर पर पगड़ी धारण किए हुए राजा (शिवाजी) ने सभा में आकर सभी राजाओं को तेजहीन कर दिया मानो प्रचण्ड सूर्य ने अपने तेज से सभी नक्षत्रों को निस्तेज बना दिया हो।

सिंहोरुसत्वो निरवद्यरूपो, वीरात्मजो वीरवरेण्यभूपः।
शत्रुञ्जयः शत्रुदलस्यहन्ता, रेजे महाराष्ट्रधरानरेशः।। ४७ ।।

सिंह के समान पराक्रमी, पवित्र रूप वाला, वीर पिता का पुत्र, वीर-वरों का राजा, शत्रुओं की जीतने वाला, शत्रुदल का संहार करने वाला, महाराष्ट्र का राजा शिवाजी सभा में सुशोभित हुआ।

सिंहासनस्थं सुगुणैरहीनम् मात्सर्यदोषादिगणैर्विहीनम्।
प्रत्यग्रसंग्राम सुधस्मरंतम्, नेमुः प्रजास्तत्र महावलिष्ठम्।। ४८ ।।

सिंहासन पर विराजमान, सभी गुणों से युक्त, मात्सर्य आदि दोषों से रहित, उग्र युद्ध में अग्नि के समान उस महाबली शिवाजी को प्रजा आ-आकर प्रणाम करने लगी।

सत्यप्रतिष्ठं दृढकर्मनिष्ठं, शिष्टं विशिष्टं नृपवीरजुष्टम्।
तेजोवरिष्ठं सुमहावलिष्ठम्, नेमुः प्रजास्तंसमुदम्महीपम्।। ४९ ।।

सत्य प्रतिष्ठा वाले, दृढकर्मों के करने में लगे रहने वाले, दूसरों के साथ सद्व्यवहार करने वाले, अन्य व्यक्तियों में अपना विशेष स्थान रखने वाले, वीर राजाओं से घिरे रहने वाले, तेजस्वियों में अग्रणी, महाबलशाली उस राजा (शिवाजी) को प्रजा ने प्रणाम किया।

प्रत्यग्रजातैः सुफलैर्यथैव,
नम्रस्सुवृक्षोभवतीह नूनम्।
सद्यः प्रसूतैः सुगुणैर्महीपो,
जातो विनम्रो द्विगुणस्तथैव।। ५० ।।

जिस प्रकार नये आये हुए फलों के भार से एक अच्छा वृक्ष निश्चित ही विनम्र हो जाता है उसी प्रकार राजा (शिवाजी) भी प्राप्त हुए सद्गुणों के भार से दुगना विनम्र हो गया।

कार्तस्वरस्तापमवाप्य वह्ने-
र्धत्ते स्वकान्तिं द्विगुणां सदैव।
इलाधिपत्यं नृपतिर्दधान,
उर्जस्वलोऽसौ द्विगुणो बभूव।। ५१ ।।

सोना अग्नि के ताप से दुगनी कान्ति वाला हो जाता है। महाराज शिवाजी भी पृथ्वी का अधिकार प्राप्त कर दुगने तेजवान हो गये।

'हेनरी' नाम विख्यातो, लब्धोपायनसंबलः।
विदेशीयः समागत्य, राजानं समुपस्थितः।। ५२ ।।

'हेनरी' नाम से विख्यात विदेशी व्यक्ति, उपहार की वस्तुएँ साथ लिए हुए सभा में आकर महाराज शिवाजी की सेवा में पहुँचा।

प्रतिपदम्महीम्पश्यन् विनम्रो नतमस्तकः।
आदाय सर्ववस्तूनि, प्राणमत्तम्महीश्वरम्।। ५३ ।।

प्रत्येक कदम पर भूमि पर दृष्टि गड़ाये हुए, विनम्र बने, हाथ जोड़े हुए एवं उपहार स्वरूप दी जाने वाली सभी वस्तुओं को लिए हुए (हेनरी) ने महाराज शिवाजी को प्रणाम किया।

यान्युपायनान्यासन्स्वामिना प्रेषितानितु।
तान्येव सम्मुखेकृत्वा, प्रोवाच सादरंनृपम्।। ५४ ।।

उस हेनरी के पास, उसके स्वामी के द्वारा भिजवाये गये, जितने भी उपहार थे, उन सबको सामने करके आदर के साथ महाराज शिवाजी से हेनरी ने इस प्रकार कहा।

भवतां दर्शनम्प्राप्य, धन्योऽहं प्रभुणा समम्।
प्रेषितंम्वस्तुजातं यत्, तत्सर्वं भवदर्पणम्।। ५५ ।।

आपके दर्शन पाकर मैं अपने स्वामी सहित धन्य हो गया हूँ। उन्होंने जो कुछ भी आपके लिए भेजा है वह सब आपकी भेंट है।

शीर्षण्यमेकम्मणिभिस्सनाथं,
प्रोद्भासमानं प्रचुरैर्मयूखैः।
उद्यद्दिनेशो निजकैर्मयूखैः,
प्रकाशते लोकहिताय चोग्रः।। ५६ ।।

उपहार में एक पगड़ी (टोप) थी जो मणियों से जड़ी थी और अपनी चमकती हुई किरणों से प्रकाशित हो रही थी। उदय होता हुआ तेजस्वी सूर्य संसार के कल्याण के लिए अपनी प्रखर किरणों से प्रकाशित हुआ ही करता है।

द्वे मौक्तिके कान्तिमयेऽमूल्ये,
नेत्रद्वयानन्दकरे जनानाम्।

देदीप्यमाने किरणैः स्वकीयै
`रुपाहरद् वै नतमस्तकोऽसौ ।। ५७ ।।

नतमस्तक उस हेनरी ने, मनुष्यों के नेत्रों को आनन्द देने वाले, अपनी किरणों से देदीप्यमान कान्ति वाले, अमूल्यवान दो मुक्ता उपहार स्वरूप भेंट किए।

गारुत्मंतैर्लौहितकैः सुरत्नैः,
सद्भासमाने शुभकंकणे द्वे।
सिंहासनस्थस्य शिवस्य चाग्रे,
संस्थाप्य हस्तेन महीम्ममार्ज ।। ५८ ।।

उस (हेनरी) ने पन्ना, मोती और रत्नों की चमक से देदीप्यमान दो कंगन (कड़े) सिंहासन पर बैठे हुए महाराज शिवाजी के सामने रखकर अपने एक हाथ से भूमि को छुआ।

अन्येऽपिभूपाः करदाः शिवस्य,
तस्थुर्हि चाग्रे नतभालदेशाः।
रत्नान्यमूल्यानि च मौक्तिकानि,
तस्मै महीपाय समर्पयन्वै ।। ५९ ।।

शिवाजी को कर देने वाले अन्य राजा भी शिवाजी के सामने नतमस्तक खड़े थे। उन्होंने भी अमूल्य रत्न एवं मोती अपने उस राजा को उपहार में अर्पित किए।

२०

स्वदेशः

सुविज्ञैः सुसभ्यैः सुविज्ञानदक्षैः,
सुधीरैः सुवीरैः सुदानानुरक्तैः।
सुशीलैः सुवेद्यैः स्वधर्मानुरक्तैः,
स्वदेशः सदैवास्ति संरक्षणीयः।। १ ।।

अपना देश (भारत) योग्य विद्वानों, सभ्य, विज्ञान के वेत्ताओं, धीर, वीर एवं दान करने में रत रहने वाले, सुशील, ज्ञानियों एवं अपने धर्म में लगे रहने वाले व्यक्तियों (भारतीयों) के द्वारा सदा ही रक्षा करने योग्य है।

सुशिष्टैर्विशिष्टैः सुसम्पन्नपुत्रै,
र्विशुद्धैर्विचारैर्जनैर्भारतीयैः।
धनाढ्यैर्दरिद्रैश्च सर्वस्वदानैः,
स्वदेशः सदैवास्ति संरक्षणीयः।। २ ।।

यह अपना भारत देश शिष्ट, विशिष्ट एवं धनवान सम्पन्न, निर्धन एवं धनी, अपना सर्वस्व दान करने वाले भारतीय मनुष्यों के द्वारा अपने शुद्ध विचारों से सदा ही रक्षा करने योग्य है।

विशालः सुरम्यो धरायाम्प्रधानो,
निधीनांधनानांवसूनां निधानः।
प्रपूज्यो ललामः प्रियप्राणदो यः,
स देशः सदैवास्ति संरक्षणीयः।। ३ ।।

यह भारत देश बड़ा विशाल; सुरम्य एवं भूतल पर प्रमुख है। यह निधियों, धनों एवं रत्नों का खजाना है। यह पूजनीय, महत्वपूर्ण स्थान रखने वाला एवं हम सबका प्राणदाता है। ऐसा देश सदा ही रक्षा करने योग्य है।

यशोयस्य देशस्य सर्वत्र गीतम्
जनैर्यत्र गांगं सुनीरञ्च पीतम्।
सुविज्ञानजातम्मनुष्यैरधीतम्,
स देशः सदैवास्ति संरक्षणीयः।। ४ ।।

जिस भारत देश का यश सारे संसार में गाया गया है। जहाँ पर मनुष्यों ने गंगा के पवित्र जल का पान किया है। जहाँ से मानवों ने विज्ञान के ज्ञान को प्राप्त किया है, वह भारत देश सदा ही रक्षा करने योग्य है।

विभेदाननेकाँश्च विस्मृत्य सर्वे,
वयंम्भारतीयाः सदायत्नशीलाः।
धरायां स्वदेशो भवेत्सर्वमान्यः
प्रसिद्धः स्वदेशः सदा वन्दनीयः।। ५ ।।

हम सभी भारतीय अपने अन्दर व्याप्त सभी भेदों को भुलाकर सदा यत्नशील हैं कि इस संसार में हमारा भारत देश सर्वमान्य हो क्योंकि अपना प्रसिद्ध देश सदा ही वन्दना करने योग्य है।

नमस्यानाम्प्रशस्यानाङ्गुरूणाञ्च मनीषिणाम्।
शिष्येण कृष्णदत्तेन, यशोवीरस्य वर्णितम्।।

परिशिष्टः

आशीर्वचनानि

सीताराम चतुर्वेदी
एम० ए० (संस्कृत, पालि, हिन्दी
प्रल भारतीय इतिहास और
संस्कृति), बी० टी० (अँग्रेजी-
शिक्षण में विशेषता), एल् एल्० बी०
साहित्याचार्य

६३/४३, उत्तर बेनिया बाग,
वाराणसी-२२१००१
फोन : ६५७१८

वेदपाठी-भवन
पंचमुखी महादेव मार्ग,
मुज़फ़्फ़रनगर-२५१००२
२५-१२-८८

विद्वद्वर पंडित कृष्णदत्त शर्मा ने संस्कृत-साहित्य-श्री की समृद्धि के लिए जो अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है उसके लिये मैं उन्हें हृदय से साधुवाद देता हूँ। अभी उन्होंने शिववीरचरितम् नाम से प्रातः स्मरणीय वीर शिवाजी का पुण्य चरित काव्य-रूप में ग्रथित करके बड़ा महनीय् कार्य किया है। ललित शैली और मनोरम छन्दों में उन्होंने विस्तार से वीर शिवाजी के आदर्शचरित के सभी पक्षों का अत्यन्त भावुकता और निष्ठा के साथ अंकन किया है।

यह और भी बहुत महत्वपूर्ण विषय है कि इस युग में जब चारों ओर संस्कृत की इतनी उपेक्षा हो रही है, उस युग में भी पंडित कृष्णदत्त शर्माजी अत्यन्त मनोयोग के साथ संस्कृत का वैभव बढ़ाते चले जा रहे हैं।

मैं उनके इस सत्प्रयास की हृदय से अभ्यर्चना करता हूँ और मुझे विश्वास है कि संस्कृत-समाज इनकी महत्वपूर्ण कृतियों का समादर करेगा।

(सीताराम चतुर्वेदी)

आशीर्वचनम्

बालकराम गौड़
व्याकरण शास्त्री, पुराणेतिहासाचार्य
भूतपूर्व प्रधानाचार्य
श्री चण्डी संस्कृत पाठशाला
हापुड़ (गांजियाबाद) उ० प्र०

२८-११-८८

श्रीकृष्णः कुशलङ्करोतु भवतां धाता प्रजानां सुखम्,
निर्विघ्नं गणनायकः प्रतिदिनं भानुः प्रतापोदयम्।
शम्भुस्ते धनधान्यकीर्तिमतुलां दुर्गारिनाशं सदा,
वाग्देवी वसताच्चिरञ्जितनुजे कुर्यात्सदा मंगलम्।।
प्रान्ते तु गाजियाबादे, चिरञ्जीलालशर्म्मजः।
बछलौता निवासी स, कृष्णदत्तः समृद्ध्यताम्।।
कृष्णस्य श्रमसाफल्यं, दृष्ट्वा हृष्यामि सोत्सुकः।
वाञ्छामि च सदैवाऽहं, श्री कृष्णोऽस्मिन्प्रसीदतु।।

आशंसनम्

स्वामी वैजनाथ गौड़
व्याकरणाचार्य, आयुर्वेदाचार्य,
एम० ए० (संस्कृत), साहित्य रत्न

पुराना बाजार
हापुड़ (गा० बाद) उ० प्र०

२०-११-८८

कृतिरियं किल काव्यगुणोचिता,
विविधभावविभूषितविग्रहा ।
सरलकोमलपद्यसुमञ्जुला,
जगति सिद्धिमुपैतु कवेः सदा।।१।।

भाषा यस्य नितान्तकान्तसरला, भावानुसंवादिनी,
'गाथा वीरशिवस्य' वैरिदलने संवर्णिता लक्ष्यते।
शूराणां हृदयेषु यत्प्रकुरुते वीरोचितां भावनाम्,
तत्काव्यं कृतवान् मनोहरमिदं श्रीकृष्णदत्तः कविः।।२ ।।

स्वामी वैजनाथः

आशंसनम्

श्री कृष्णदत्त जी।

१३ मानसरोवर
गली नं० ३, मेरठ

सस्नेह हृदय स्पर्श।

२८-२-८९

आपकी रचना 'शिववीरचरितम्' मुझे अधिक रुचिकर लगी।

रचितं कृष्णदत्तेन, शिवचरितं मनोहरम्।
विदुषा विदुषांदृष्ट्वा, मनस्सम्यक् प्रसीदति।।

श्रावं श्रावं तस्य वीरस्य शौर्यं।
ध्यायं ध्यायं तस्य वीरस्य धैर्यम्।।

पाठं पाठं सुष्ठु चरितं शिवस्य।
जोषं पूर्णं प्राप्नुयादेष लोकः।।

श्रीयुत —
श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री
८१ जवाहर गंज
हापुड़ (गाजियाबाद)

भवदीय
जगन्नाथ व्यास
मेरठ

शुभ-कामना

आचार्य गिरिजा शंकर वलूनी
प्राचार्य श्री विल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, सदर मेरठ।

निवास :- १३/२, गांधी नगर
मेरठ।

दिनांक : ६-२-८९

अनेकों रचनाओं से मां भारती को अलंकृत करने वाले कवि, मनीषी भ्राता श्री कृष्णदत्त शास्त्री जी द्वारा रचित "शिव वीर चरितम्" महाकाव्य को देखने का अवसर मिला। काव्यगुणोचित सुमधुर लालित्यपूर्ण पदावली युक्त शिववीर चरित कवि की उदात्त वृत्ति का द्योतक है।

आशा है यह रचना सहृदयों को आनन्दित करेगी। विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत वन्धुवर की यह रचना भी पुरस्कार योग्य है।

मैं परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि श्री शास्त्री जी दीर्घायु और यशस्वी हों तथा नित्य अपनी ओजस्विनी लेखिनी के अजस्त्रप्रवाह से साहित्य जगत् को उपकृत करते रहें।

अनेकों शुभकामनाओं सहितः—
गि० शं० शर्मा

सुनील शास्त्री
पूर्व ऊर्जा मन्त्री

9, माल एवेन्यू,
लखनऊ

१६ फरवरी, १९८९

प्रिय श्री कृष्णदत्त जी,

आपका पत्र दिनांक २२-१२-८८ मिला। धन्यवाद।

आपकी तीनों रचनाओं (१) भारत दर्शनम (२) प्रताप प्रशस्तिः तथा (३) कृपाण सैनिकौ को मैंने आद्योपान्त पढ़ा। वास्तव में इन रचनाओं के लिए आप भूरि-भूरि प्रशंसा के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि आपका यह प्रयास देश के भावी नागरिकों में जनजीवन का संचार करेगा।

आपकी नयी रचना "शिव वीर चरितम्" एक उत्कृष्ट काव्य है जिसके कुछ श्लोक मैंने पढ़े जो बड़े रोचक, शिक्षाप्रद व ज्ञानवर्धक हैं।

मैं आपके इस सतत् प्रयास के लिए अपनी शुभकामनायें भेजता हूँ।

आपका,
सुनील शास्त्री

श्री कृष्णदत्त शर्मा,
सेवा नि०सहजिला विद्यालय निरीक्षक,
८१, जवाहरगंज हापुड़,
गाजियाबाद।

रमेशकुमार लौ
एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष-संस्कृत विभाग
सनातन धर्म कालेज, मुजफ़्फ़रनगर

निवास : २८०, सिविल लाइन (दक्षिणी)
मुजफ़्फ़रनगर-२५१००१

२५-१२-८८

आदरणीय पं० कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री आधुनिक काव्य शैली में अत्यन्त हृदयग्राही और सरल संस्कृत-काव्य रचना में विचक्षण कवि हैं। आपका 'भारतदर्शनम्' लघुकाव्य उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत हो चुका है। शर्मा जी के नतून काव्य, 'शिववीर चरितम्' के कुछ अंशों का अवलोकन किया। निस्सन्देह यह काव्य जहाँ संस्कृत में ऐतिहासिक काव्यों की न्यूनता को भरता है वहाँ संस्कृत को आधुनिक भाषाओं की काव्य परम्परा में लाता है। कवि ने सरल और सरस पदावली का प्रयोग किया है और फारसी-उर्दू के भी प्रचलित पदों को अपनाकर संस्कृत का शब्द भण्डार बढ़ाया है। आशा है इस काव्य को भी सहृदयजन गौरव प्रदान करेंगे। मेरी शुभकामनायें।

रमेश कुमार लौ
संयोजक
पाठ्य क्रम, शोध समिति
मेरठ-विश्वविद्यालय

डॉ० एस० पी० सिंह
एम० ए०, पी-एच० डी०,डी० लिट्
प्रोफेसर एवं चेयरमैन

संस्कृत विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

२४-११-८८

पण्डित कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री विरचित 'शिव वीर चरितम्' के कतिपय अंशों का अवलोकन किया। पण्डित शर्मा का संस्कृत भाषा के ऊपर बहुत अच्छा अधिकार है। वे संस्कृत में मातृभाषा जैसी सुगमता के साथ रचना करते हैं। उनकी कविता सरल, सरस एवं ओजपूर्ण है। कथा का निर्वाह करने के साथ-साथ वे स्थान-स्थान पर अतीव मनोरम ढंग से सूक्ष्म विचारों एवं भावों का उपनिबन्धन करते हैं जो उनकी कविता को गहराई प्रदान करता है। इनकी रचना जनसामान्य के अतिरिक्त संस्कृत के आरम्भिक विद्यार्थियों के लिए सुतरां उपयोगी है। वे इसी उत्साह के साथ देववाणी के भण्डार को भरते रहें, यही मेरी शुभ कामना है।

सत्यप्रकाश सिंह
३/५०८ वेगपुर, अलीगढ़

महेन्द्र कुमार मिश्रा
एम० ए० पी-एच० डी०
संस्कृत स्नोत्कोत्तर विभाग
श्री वार्ष्णेय कालेज,
अलीगढ़-२०१ ००१

निवास : सुरेन्द्र नगर
अलीगढ़-२०२००१
१५-२-८९

प्रताप प्रशस्ति एवं कृषाण सैनिकौ काव्यों के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीय चरित्रों की अस्मिता के सार्थक सहज गायक आदरणीय कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री के द्वारा देववाणी की अर्चना में समर्पित काव्य कुसुमांजलि 'शिववीर चरितम्' काव्य की भाषा, शैली और युग सापेक्ष नायक के निरुपित चरित्र चित्रण ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया है। काव्य में उनका सौजन्य और वैदुष्य साथ मिलकर सुगन्ध संयोग की सृष्टि करता है।

'शिववीर चरितम्' सुरभारती के सारस्वत यज्ञ में एक सार्थक आहुती है। श्री शर्मा की सफलताओं, योग्यता, रचनाधर्मिता तथां सहजविद्वत्ता से संस्कृत साहित्य निःसंदेह विलसित होगा। सरल संस्कृत की दृष्टि से उनका काव्य लोकरंजक होगा। एतदर्थ साधुवाद सहित शुभकामनाएँ अर्पित हैं।

महेन्द्र कुमार मिश्र

विद्वत् वरेण्यः
श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री
८१ जवाहर गंज, हापुड़, उ० प्र०

डॉ० श्री निवास मिश्र
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
धर्म समाज कालेज, अलीगढ़
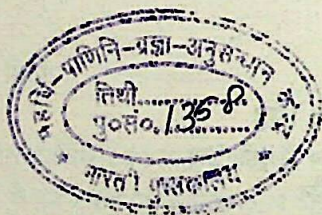
श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री द्वारा विरचित 'शिववीर चरितम्' का सिंहावलोकन किया। यह एक २० सर्गों का महाकाव्य है जिसमें लगभग ५७० श्लोक हैं। महाराज शिवाजी के वरित्र का उसमें वैशद्येन वर्णन है।

प्रस्तुत महाकाव्य के कवि श्री शर्मा जी संस्कृत के एक निष्ठावान पुजारी हैं। आपकी भाषा सरल, प्रभावशाली है तथा अभिव्यक्ति सक्षम। आधुनिक संस्कृत काव्यकारों में श्री कृष्णदत्त शर्मा का प्रमुख स्थान है। मैं उनके सफल काव्य जीवन की कामना करता हूँ।

श्रीनिवास मिश्र
१८-२-८९

आशंसा

विद्यावाचस्पति, **विजयपाल शास्त्री**
साहित्याचार्य, सिद्धान्तवाचस्पति, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), साहित्य रत्न
अधिष्ठाता-आर्य प्रतिनिधि सभा,
उ० प्र० विद्यार्य सभा लखनऊ
पूर्व आचार्य-महानन्द मिशन इन्टर कालेज
पटेल मार्ग-गाजियाबाद

१३.५ नया आर्यनगर
गा० बाद

मैने 'शिववीर चरितम्' की पाण्डुलिपि का अवलोकन किया। इसके रचयिता श्री कृष्णदत्त शर्मा संस्कृत भाषां के प्रकाण्ड विद्वान हैं। आज के युग में इस प्रकार के वीर रसात्मक काव्य की नितान्त आवश्यकता है। इस चरित को पढ़कर पाठकगण अदम्योत्साह अनुभव करेंगे। आने वाली युवा शक्ति के लिए यह पुस्तक प्रेरणा-स्रोत सिद्ध होगी, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ।

इस 'शिववीर चरितम्' की भाषा, भाव, शैली अत्यन्त समीचीन एवं सर्वग्राह्य है। मैं श्री पं० कृष्णदत्त जी शर्मा शास्त्री-इस पुस्तक के रचयिता की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति प्रणाली की सराहना करता हूँ।

विजयपाल शास्त्री
२१-१२-८९

अवस्स पठणिज्जो

मए शिववीर चरियं पोत्थियं अवलोइया.सा पोत्थिया देशभक्तिभावेण अलंकिया पोत्थियाँ कत्तुणा देशभक्ति भावं अणुवमं दंसिता। मम मणो अईवप्पसन्न भूओ, कत्तुणोपुणो पुणो धन्नवादं देमि। जेण अई व परीसमेण देशभक्ति वसेण काव्वं कट्टु, जणयाए देशभक्ति मग्गं पदेसिया इयं रयणा सुंदराऽत्थि जणाणं अवस्समेव भणणिज्जो पठणिज्जो। कत्तुणा जहा ठाणं अईव उवयोगी उद्धरणाणं पसंसणिज्जो पयोगं कडं, तहा जैनागम उत्तराज्झयणस्स एगूणतीसाए अज्झयणेथूइस्स एवं फलं वण्णिऊं जहा," थय थुइ मंगलेणं भते जीवे किं जगयइ ?

थय थुइ मंगलेणं नाण दंसण चरित्त बोहिलाभं जणयइ। नाणदंसणचरित्त बोहिलाभ संपन्ने य जीवे अन्तकिरियं (मोक्ष) कप्प विमाणोववत्तिगं आराहणं आराहेइ। अओ कण्णदत्तेण माहणेण रूदं 'शिववीर चरियं" अवस्स पठणिज्जो सव्व भव्व जीवाणां।

मुणि सुव्वयं
(मुनि सुव्रत शास्त्री एम० ए० हिन्दी, एम० ए० संस्कृत
वरिष्ठ शोध छात्र एस० एस० जैन सभा,
जैन नगर, मेरठ)

आशीर्वचन

राष्ट्र सन्त
उत्तर भारतीय प्रवर्तक
भण्डारी श्री पद्म चन्द्र जी महाराज

स्नेहशील, पण्डित रत्न, सन्तसेवक, देशभक्त श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री, एम० ए० उदारमना प्रौढ़ विद्वान है। ये हृदय से सरल और मधुर भाषी, कर्त्तव्यपरायण तथा सतत उद्यमशील साहित्य साधक हैं। आपकी देशभक्ति प्रशंसनीय है। उनकी तीन रचनाएं, भारत दर्शनम्, प्रताप प्रशस्ति, कृषाणसैनिकौ तथा अप्रकाशित रचना "शिववीर चरितम्" की प्रैस प्रति देखकर मन बहुत प्रसन्न हुआ। आपकी सभी कृतियाँ भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से उत्तम हैं। भाषा की जटिलता और अलंकारों की बहुलता से कवि बचकर चला है। फिर भी भावों की प्रवहणशीलता पाठक को बांधे रखती है। ये कृतियाँ देशभक्ति का पाठ पढ़ाने में पूर्ण सक्षम हैं। विद्यालयीय पाठ्यक्रम में यदि नियमित रूप से पढ़ाई जाएँ तो नवभारत संतति अवश्य उपकृत होगी। कवि इसी प्रकार अप्रकट महापुरुष चरित्रों को प्रकट करते हुए, वीतरागवाणी के अनुसार—

नाणेणं दंसणेणं च चरित्तेण तहेव य।
खंतीय मुत्तीए बडढमाणो भवाहिय।। उत्तराध्ययन सूत्र २२/२६

अर्थात् आप ज्ञान, दर्शन, चरित्र, क्षमा और निर्लोभता के द्वारा आगे बढ़ो।

पूज्य गुरु उत्तर भारतीय प्रवर्तक, जैन सन्त
श्री भण्डारी पदम चन्द जी म० की आज्ञा से
सुव्रत मुनि,